छुआछूत के विरुद्ध गाँधी की मुहिम

बरेन रे

अनुवाद: दिनेश राम

छुआछूत के विरुद्ध गांधी की मुहिम

बरेन रे

यह आलेख पुस्तक 'छुआछूत के विरुद्ध गांधी की मुहिम–1933–34; गाँधी शांति प्रतिष्ठान 1996, का परिचयात्मक लेख है। यह पुस्तक गाँधी जी के 1933–34 के छुआछूत विरोधी आंदोलन के दौरान दिए गए भाषणों के पुलिस रिकॉर्ड के अध्ययन पर आधारित हैं। श्री बरेन रे, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के सदस्य व स्वतंत्रता सेनानी थे।

अनुवाद : दिनेश राम

© सर्वजन सुलभ, 2017
अपने नज़रिए से इसे इस्तेमाल करने, पुनर्प्रकाशित करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। हमें सूचना देंगे तो अच्छा लगेगा।

प्रकाशक

nf{k.k ,f'k;kbl gfjr Lojkt lokn
(साउथ एशियन डॉयलॉग्स ऑन इकोलोजिकल डेमोक्रेसी)
सिएमनपूॅ फाउंडेशन, फिनलैंड, के वित्तीय सहयोग से
बी ई – 14 ए, डी.डी.ए. फ्लैट्स,
मुनिरका, नई दिल्ली – 110067
ईमेल : networkscommunication@gmail.com

DAANISH
BOOKS
दानिश बुक्स्
संपादकीय कार्यालयः 13 सी, स्काईलार्क अपार्टमेंट्स,
गाजीपुर, दिल्ली– 110096
www.daanishbooks.com

ISBN : 978-93-81144-63-3

Published by:

South Asian Dialogues on Ecological Democracy (SADED)
(With financial support from Siemenpuu Foundation, Finland)
B E - 14 A, D.D.A. Flats,
Munirka, New Delhi- 110067
Phone: 011- 26101580
Email: networkscommunication@gmail.com

Printed by Multiplexus (India)
multiplexusindia@gmail.com

fo"k; lph

1.	छुआछूत के विरुद्ध गांधी : एक परिचयात्मक निबंध	06
2.	छुआछूत के प्रति कांग्रेस के दृष्टिकोण का आरंभिक इतिहास	26
3.	छुआछूत के विरुद्ध गांधी की आरंभिक स्थिति	30
4.	वर्णाश्रम धर्म और अनुवांशिक पेशे पर गांधी की स्थिति	31
5.	छुआछूत और सामाजिक सुधार – 1929	32
6.	छुआछूत, वर्ण और जाति	35
7.	प्राथमिकता किस आंदोलन को और कब?	42
8.	पर्णकुटी पत्र	43
9.	दास प्रथा के अंत का शताब्दी वर्ष	45
10.	दक्षिण अफ्रीकी और भारतीय छुआछूत के बीच अंतर	46
11.	गांधी के कुछ कथन	48

N|vkN|r d| fo#) xkèkh %
,d ifjp;kRed fucèk

संयोग से गांधी की 125वीं जयंती और उनके द्वारा छुआछूत के विरुद्ध चलाई गई ऐतिहासिक मुहिम के समापन वर्ष की साठवीं सालगिरह एक ही साथ वर्ष 1994 में संपन्न हुई। छुआछूत के विरुद्ध गांधी की मुहिम ने हिन्दू समाज की मूलभूत संरचना को झकझोर दिया। इस तरह की मुहिम न तो इससे पहले और न ही इस सदी के दौरान जो अपने अंत की ओर है, चलाई गई। हालांकि, गांधी जी की यह मुहिम पूरी तरह सफल नहीं रही लेकिन इसके बावजूद इसका बड़ा महत्त्व है। दक्षिण अफ्रीका में उन्हीं के एक करीबी मित्र और सहयोगी रहे हेनरी पोलाक ने जो बाद में उनके जीवनीकार भी हुए गांधी की इस मुहिम पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि ''गांधी ने छुआछूत पर कभी न उबर पाने वाला आघात किया।''

पश्चिम के एक दूसरे लेखक, होरेश अलेक्जेंडर ने, जो जीवन भर गांधी के कामों पर नजर रखे रहे, छुआछूत की मुहिम पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''यह कहने में कोई दिक्कत नहीं कि जब छुआछूत के खात्मे की पूरी कहानी लिखी जाएगी, यद्यपि कि जो अगले पचास वर्षों तक संभव नहीं लगती, तो अछूतोद्धार की व्यवस्थित प्रक्रिया के आरंभ की निर्णायक तारीख गांधी के सितंबर 1932 के उपवास से मानी जाएगी। यहां मानव समानता और लोकतंत्र की विश्व अवधारणा तथा क्रिश्चियन मिशन के योगदान पर संदेह नहीं किया जा रहा है। इस तरह की शक्तियों और प्रयासों का अपना महत्त्व है।'' ज्ञातव्य हो कि होरेश अलेक्जेंडर की यह टिप्पणी गांधी की मुहिम के 35 साल बाद की है।

आज के समाचार पत्रों की रिपोर्टों, लेखों और दलित साहित्य को देखने से पता चलता है कि दलितों में जो पहले अछूत कहे जाते थे उनमें गाँधी की प्रतिष्ठा कम है। वे जाति व्यवस्था के विषय में गांधी के दृष्टिकोण को एक भावुक विचार मानते हैं जो वर्णाश्रम व्यवस्था को बनाए रखने में सहायक है। ऐसा भी कहा जाता है कि गांधी ने लोगों के अपने पैतृक पेशे से जुड़े रहने की वकालत की। इसके अतिरिक्त उन पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि उन्होंने दलितों को इस बात की सलाह दी कि वे उच्च जातियों के साथ वैसे ही संबंध विकसित करें जैसे ब्लैक अंकल टाम ने अपने गोरे मालिकों के साथ विकसित किया था। ये बातें सत्य से परे हैं। गांधी के लिए सत्य से बड़ा कुछ भी नहीं जो उनका आधार था और जिसके लिए वे संघर्षरत रहे।

ऐसा कहना कि जाति व्यवस्था का अंत पूरी तरह संभव था और ऐसा करना बड़ा आसान था लेकिन गांधी ने केवल छुआछूत के अंत पर जोर देकर पूरी व्यवस्था को जस का तस बने रहने दिया, या इसको समूलतः नष्ट किया जा सकता था पर अकेले गांधी इसमें आड़े आ गए, गांधी के विरुद्ध एक दुष्प्रचार है। ऐसा कहकर दरअसल उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत किया जा रहा है। गांधी, पहले यह विश्वास करते थे कि प्राचीन भारत में वर्णाश्रम और जाति व्यवस्था ने श्रम के सामाजिक विभाजन की एक व्यावहारिक व्यवस्था के रूप में बड़े पैमाने पर हिंदू समाज में मौजूद भिन्न–भिन्न जाति के लोगों को एक रखने में बड़ी मदद की है। भारतीय इतिहास के विषय में गांधी की यह समझ वर्ष 1930 के पहले की है। इसलिए इसकी आलोचना बाद के पुरातात्विक और नृतत्व शास्त्री खोजों अथवा स्वतंत्रता के बहुत बाद के दशकों के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रकाश में न तो की जा सकती है और न ही की जानी चाहिए।

अगर इतिहास को कुछ हद तक गौरवान्वित करने से स्वतन्त्रता आंदोलन में मदद मिल रही थी तो गांधी ऐसा करने में कोई बुराई नहीं समझते थे। वे ही नहीं, उनके समय के सभी राष्ट्रीय नेता इसी विचार के थे। पर गांधी ने कभी भी इतिहास को गलत तरीके से गौरवान्वित करने की कोशिश नहीं की, बल्कि इसके स्थान पर उन्होंने इतिहास को आधुनिक मूल्यों जैसे – सत्य, न्याय, साहस, समानता और व्यक्तिगत गरिमा के अनुरूप व्याख्यायित किया। गांधी के लिए ये मूल्य अपने प्राचीन को पुनर्जीवित करने के लिए ही आवश्यक नहीं थे, बल्कि पतनशील समाज को नया जीवन देने के लिए भी आवश्यक थे। इसलिए जहां वे एक तरफ कुछ हद तक इतिहास को गौरवान्वित करने के पक्षधर थे तो वहीं दूसरी तरफ परंपरा से चली आ रही उन चीजों के घोर विरोधी थे जो दमन, शोषण और प्रतिक्रियावाद की पक्षधर थे जिन्हें उन्होंने विकसित होती हुई ऐतिहासिक प्रक्रिया का निकृष्टतम् उत्पाद कहा और समाप्त करने का आह्वान किया। इतना ही नहीं इनके विरुद्ध संघर्ष करने में वे अपने समकालीनों से कहीं बहुत आगे थे।

वर्ष 1932 से 1934 तक का काल गांधी के व्यक्तिगत जीवन और साथ ही साथ राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण था। लंदन में हुए पहले गोलमेज सम्मेलन के अपने निराशाजनक अनुभव के बाद गांधी ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि समाज में मौजूद तमाम तरह के विभाजनों के बावजूद देश को विदेशी शक्तियों से लड़ना होगा। इसके अलावा उसी समय साम्प्रदायिक विभाजन के साथ–साथ सवर्ण और अवर्ण का विभाजन भी सतह पर आ गया था। अपने हक में अंग्रेजों से अधिक से अधिक सत्ता प्राप्त कर लेने की होड़ में, जिसे हम साम्राज्यवादी अनुग्रह प्राप्त करने की कोशिश भी कह सकते हैं, उस समय विचित्र स्थिति पैदा हो गई जब दूसरे गोलमेज सम्मेलन के परिणामों के बाद पारंपरिक रूप से एक दूसरे के विरोधी अछूतों और उच्च जातीय हिन्दुओं के बीच का संबंध एक बड़े संघर्ष तक पहुँच गया। ब्रिटिश प्रधान मंत्री रैम्सेमैक्डोनाल्ड ने अनुसूचित जातियों के लिए एक पृथक निर्वाचक मण्डल का प्रस्ताव सम्मेलन में रखा था जिसका उद्देश्य यह था कि निकट भविष्य में बनने वाली परिषदों और विधान सभाओं में, वे

चन्द पढ़े लिखे और तुलनात्मक रूप से संपन्न दलित, सौभाग्य से जो सरकारी नौकरियों में भर्ती की नीति और निजी अनुग्रह के चलते अस्तित्व में आये थे, अपनी जनसंख्या के अनुपात में अपने प्रतिनिधि भेज सकें।

इस प्रस्ताव के माध्यम से प्रतिनिधित्व की उपयुक्त व्यवस्था को सुनिश्चित करना था। अनुसूचित जातियों का यह अलगाव मात्र निर्वाचक मंडल की सामान्य प्रक्रिया से ही नहीं था, बल्कि बड़े पैमाने पर यह उनका हिंदू समाज से अलगाव था जो सामान्य रूप से गांधी, कांग्रेस और राष्ट्रवादियों के लिए एक खतरे की घंटी थी। पृथक निर्वाचक मण्डल का यह विचार ब्रिटिश सरकार के लिए नया नहीं था। मुसलमानों को यह वर्ष 1909 में ही मिल गया था। उस समय के वायसराय लार्ड मिंटों का यह चालाकी भरा कदम था ताकि वह एक चौथाई जनता को राष्ट्रवादियों की जमात से अलग रख सके। इसके बाद सिक्खों की राजनीति के चलते उन्हें भी वर्ष 1919 में पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला। लेकिन ज्यों ही ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्से मैक्डोनाल्ड ने गोलमेज सम्मेलन में अछूतों के लिए यह व्यवस्था प्रस्तावित की तो गांधी ने इसका कड़ा विरोध किया। इस संदर्भ में गांधी ने अपना तर्क देते हुए कहा कि मुसलमान, सिक्ख और ईसाई ये हमेशा ही अपने इसी पहचान के साथ बने रहेंगे, पर क्या भविष्य में अछूत ऐसे ही बने रहेंगे, जो आज हैं, या उन्हें ऐसा ही रहना चाहिए! आगे उन्होंने कहा कि अछूतों की स्थितियों में सुधार हो इसके लिए पर्याप्त रियायतों की व्यवस्था होनी चाहिए। यहां तक कि उन्हें परिषदों और अन्य चुनी हुई संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए। पर किसी भी सूरत में इन्हें सामान्य निर्वाचन मण्डल से अलग न किया जाए। उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा कि अगर ऐसा किया गया तो वे अपने जीवन की कीमत पर इसका विरोध करेंगे।

ब्रिटेन से आए हुए गांधी को एक हफ्ते भी नहीं हुए थे कि वे गिरफ्तार कर लिए गए। यह गत वर्ष संपन्न हुए गांधी इरविन समझौते की भावना के विरुद्ध था जिससे वायसराय विलिंग्टन और कांग्रेस में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस मुद्दे पर प्रशासन किसी भी सूरत में कांग्रेस के समक्ष झुकने के लिए तैयार नहीं था। कुछ ही महीनों बाद जब अछूतों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल का प्रस्ताव मैक्डोनाल्ड के 'कम्युनल अवार्ड' में शामिल किया गया तो गांधी ने आमरण अनशन की घोषणा कर दी। वह भी तब तक के लिए जब तक कि वह वापस नहीं ले लिया जाता। गांधी ने कहा कि उनकी प्राथमिक चिंता इस संवैधानिक प्रावधान का मात्र विरोध करने में नहीं, बल्कि एक तरफ तो इस बात में है कि छुआछूत के अमानवीय व्यवहार को हिंदू समाज में चल रहे अन्य सुधारों के साथ अतिशीघ्र समाप्त किया जाए और दूसरी तरफ उन दलीलों को भी जो औपनिवेशिक शक्तियों को हिन्दू समाज में विघटन पैदा कर उसे तबाह करने का अवसर प्रदान करती हैं।

'कम्युनल अवार्ड' के स्थान पर गांधी यह चाहते थे कि पृथक निर्वाचक मंडल को छोड़ अछूत समाज के नेता वे सब रियायतें ले लें जो हिंदू समाज को कमजोर करने की बजाय मजबूत करने वाली हों। गांधी के लगातार उपवास से उनके जीवन पर आसन्न खतरे को देखते हुए कट्टरपंथी हिंदुओं के विरुद्ध बड़े पैमाने पर जनमत तैयार हुआ। उस

समय लोगों की यह सोच बनने लगी थी कि अछूतों के मंदिरों में प्रवेश से ये कट्टरपंथी ही रोकते हैं और इन्हीं के कारण आज गांधी का जीवन खतरे में है। परिणामतः सैकड़ों मंदिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खोल दिए गए। और बड़े पैमाने पर हिंदू नेताओं ने अछूतों के प्रति सदियों से किए जा रहे भेदभाव पूर्ण व्यवहार को समाप्त करने की प्रतिज्ञा ली। साथ ही साथ इन नेताओं ने डा. आंबेडकर तथा अन्य दलित नेताओं के साथ मिलकर पृथक निर्वाचन के स्थान पर आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व देने का फार्मूला तैयार किया। पृथक निर्वाचन पद्धति में दो स्तरों पर चुनाव होते थे। पहले स्तर पर अनुसूचित जाति के मतदाताओं को अकेले अपने समाज से एक निर्वाचक मण्डल को चुनना था जिसकी संख्या आरक्षित सीटों की संख्या से चार गुना थी। दूसरे स्तर पर अनुसूचित जाति के मतदाता को गैर मुस्लिम समाज के साथ सामान्य निर्वाचक मण्डल से अपने पसंद के एक उम्मीदवार को चुनना था। पर नए समझौते के तहत अनुसूचित जातियों को उन आरक्षित सीटों से प्रायः दो गुनी सीटें प्रदान की गईं जितनी ब्रिटिश श्वेत पत्र में देने की प्रतिज्ञा की गई थी। अंततः दोनों पक्षों में सहमति बन गई। ब्रिटिश सरकार भी अपने श्वेत पत्र में सुधार करने के लिए इस शर्त पर तैयार हो गई कि दोनों पक्ष अछूत और हिंदू आपस में संतुष्ट हों और समझौते पर दृढ़ हों। इसके बाद महात्मा ने अपना उपवास आत्मोत्सर्ग के सात दिन बाद अर्थात 25 सितंबर को तोड़ा। वैसे महात्मा गांधी के जीवन पर आए इस खतरे से अधिकांश नेता चिंतित थे, लेकिन अकेले रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा कि छुआछूत हिंदू धर्म के लिए एक गंभीर समस्या है जिसने अपनी समाप्ति के लिए महात्मा के मूल्यवान जीवन को खतरे में डाल कर सिद्ध कर दिया। गांधी के 'एपिक फास्ट' शुरू करने के एक घंटे पहले उन्हें रवीन्द्रनाथ टैगोर का टेलीग्राम मिला जिसमें उन्होंने अपनी भावनाओं को कुछ इस प्रकार से व्यक्त किया था और गांधी के इस उपवास को 'धधकते हुए दरवाजे में प्रवेश' करने की संज्ञा दी थी।

> देश और समाज की एकता के लिए जीवन की आहूति देना महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि हम यह नहीं बता सकते कि इसका हमारे शासकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जो यह नहीं जानते कि यह हमारे लोगों के लिए कितने महत्त्व का है। पर मुझे विश्वास है कि देशवासियों की अंतरात्मा को जगाने के लिए की गई आत्मोत्सर्ग की ऐसी उदात्त अपील व्यर्थ नहीं जाएगी। मैं इस बात से आशान्वित हूँ कि हम लोग इतने निष्ठुर नहीं कि इस राष्ट्रीय विपत्ति को अपने चरम पर पहुँचने दें। हमारा गमगीन हृदय आपके आत्मदण्ड की उदात्त भावना का प्रेम और श्रद्धा के साथ अनुसरण करेगा।

सी. डब्ल्यू. एम. जी L1 109

अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व के मुद्दे और चुनाव के नियमों के, जिसे 'पूना पैक्ट' के नाम से जाना गया, समझौते के बाद इसी के समानांतर एक और घोषणा पत्र जेल में रहते हुए गांधी ने तैयार किया था और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कई संगठनों कांग्रेस, उदारवादी और हिंदू महासभा आदि के नेताओं से आग्रह किया था। साथ ही वे इसे स्वीकारने की सार्वजनिक घोषणा करें, इस बात का भी आग्रह किया। 25 सितंबर

1932 को बाम्बे की एक संयुक्त जनसभा में इसकी घोषणा की गई जो इस तरह है :

> सम्मेलन में यह संकल्प पारित किया जाता है कि आज से हिंदुओं के बीच से अपने जन्म के कारण कोई भी व्यक्ति अछूत नहीं होगा। और अब तक जो लोग अछूत समझे जाते रहे हैं वे सार्वजनिक कुओं, स्कूलों, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थानों के प्रयोग के लिए उसी तरह स्वतंत्र होंगे जिस तरह अन्य हिन्दू लोग। इस अधिकार को प्रथम अवसर के रूप में वैधानिक मान्यता प्राप्त होगी। और अगर इसे स्वराज्य संसद के अस्तित्व में आने के पहले तक वैधानिक मान्यता नहीं मिलती तो यह संसद के अस्तित्व में आने पर उसके शुरू के पारित होने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण अधिनियमों में से एक होगा।
>
> आगे इस बात पर भी सहमति व्यक्त की जाती है कि तथाकथित अछूतों पर मंदिरों में उनके प्रवेश पर रोक तथा परंपरा से उनके ऊपर जो भी अयोग्यताएँ लादी गई हैं उसको समाप्त करने के लिए हर हिंदू नेता शांतिपूर्ण ढंग से प्रयास करेगा अर्थात् इसकी समाप्ति के लिए वह किसी अनुचित साधन का प्रयोग नहीं करेगा।

सौभाग्य से प्यारे लाल की पुस्तक 'द एपिक फास्ट' के माध्यम से इन घटनाओं को सभी जानते हैं जिनकी प्रतिध्वनि देश में ही नहीं विदेश में भी सुनी गई। यह ध्यान देने वाली बात है कि गांधी ने स्वयं इस घोषणा पत्र को ऐतिहासिक बताया और आगामी दशकों अर्थात, सत्ता के स्थानांतरण तक, वे अपने हिंदू साथियों को यह याद दिलाते रहे कि यह एक वादा है जिसे उन्हें निभाना है। लेकिन इस बात का दुःख है कि इस घोषणा पत्र में किए गए वादे को लागू करने के लिए न तो किसी हिंदू संगठन ने और न ही कांग्रेस सरकार ने जो 1937 से 39 तक सत्ता में रही, कोई औपचारिक और वैधानिक प्रयास किया।

हालांकि ब्रिटिश सरकार ने समझौते का स्वागत करते हुए अपने प्रस्ताव को वापस ले लिया और पूना पैक्ट पर अपनी सहमति प्रदान कर दी लेकिन इस समझौते को लेकर दोनों पक्षों की ओर से शिकायतों की सुगबुगाहट भी शुरू हो गई। डा. बी. आर. आंबेडकर ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया कि अगर वे इस समझौते के लिए ब्लैकमेल नहीं किए गए तो कम से कम नैतिक दबाव के शिकार जरुर बनाए गए। उन्होंने यह माना कि भले ही इस समझौते के तहत अनुसूचित जाति के लोगों को सीटें ज्यादा मिल गई हों पर सवर्ण मतदाता उसी अनुसूचित जाति के पैनल को चुनेगा जो उसके अनुकूल होगा तथा गांधी की तमाम सिफारिशों के बावजूद हिंदू समाज अनुसूचित जाति के लोगों के साथ अपने दमनकारी और शोषणकारी रिश्ते को नहीं सुधारेगा, आदि। इसके विपरीत हिंदू जाति के लोग यह अनुभव करने लगे कि गांधी ने अनुसूचित जातियों के लिए कुछ ज्यादा ही सीटें दे दीं। विशेष रूप से बंगाल में कम्यूनल एवार्ड और पूना पैक्ट के विरुद्ध लोगों का क्षोभ बहुत उग्र और संगठित था। यहीं से कट्टरपंथी हिंदुओं ने एक तरफ अपनी सामाजिक परंपराओं को बचाने के लिए आक्रामक रुख अपनाया और दूसरी तरफ यह सुनिश्चित करने के लिए कि ब्रिटिश सरकार भारत को जो भी रियायतें देने वाली हैं उसमें हिंदुओं को बड़ा भाग मिले, संघर्ष आरंभ किया।

पूना पैक्ट के बाद की घटनाओं को लेकर गांधी चिंतन की मनःस्थिति में थे। उस समय उनके समक्ष एक तरफ पूना पैक्ट को लेकर हिंदू जातियों में फैला हुआ असंतोष का भाव था तो दूसरी तरफ दो वर्ष पूर्व ही हुए सफल 'नमक सत्याग्रह' की तुलना में राष्ट्रीय आंदोलन की बहुत कमजोर स्थिति। इस समय गांधी अपनी अंतरात्मा का अनुसरण करते हुए एक नए रास्ते की तलाश में थे। वे एक ऐसे नारे और रणनीति की खोज में थे जिसके माध्यम से लोगों को इकट्‌ठा कर सकें, विशेष रूप से संपूर्ण हिंदुओं को एक ऐसी रणनीति जिसके विषय में गांधी का मानना था कि वह हिंदू समाज में व्याप्त ऊँच–नीच के विभाजन को समाप्त कर उसमें एकता की भावना पैदा करे जिससे सवर्ण और अवर्ण का भाव मिटे और साम्प्रदायिक एकता का मार्ग प्रशस्त हो। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उन्होंने पाया कि उस समय के दलित आंदोलन की स्थिति बहुत कमजोर थी। इसके विपरीत कट्‌टरपंथियों का आंदोलन तेज और आक्रामक था। इसी बीच केंद्रीय विधान सभा के समक्ष एक अनाधिकारिक विधेयक लाया गया, जिसमें सरकार के उस अधिकार को वापस लेने की मांग की गई थी जिसके कारण अधिकांश हिंदू मंदिरों में अनुसूचित जाति के लोगों को प्रवेश करने की मनाही थी। इस विधेयक पर अलग–अलग गैर–सरकारी सार्वजनिक निकायों का क्या रुख हो – गांधी के समक्ष महत्त्वपूर्ण कई प्रश्नों में से एक प्रश्न यह भी था। गांधी लगभग एक वर्ष तक परिस्थितियों का निरीक्षण करते रहे। अपने जेल जाने की संभावनाओं और सिविल नाफरमानी आंदोलन पर सरकार के प्रतिबंध को, जिसके कारण कई कांग्रेसी नेता जेल में थे, देखते हुए उन्होंने समाज सुधार आंदोलन चलाने का विचार बनाया। उस समय इसके साथ एक अच्छी बात यह थी कि इसे रोकने का सरकार के पास भी कोई तर्क नहीं था। हालांकि यह कट्‌टरपंथियों के निहित स्वार्थों और कमजोर वर्गों के लिए चलाए जा रहे सुधारवादी आंदोलनों के बीच टकराव को जन्म देने वाला था। लेकिन कैसे? इसकी चर्चा इस प्रक्रिया में आगे की जाएगी।

कांग्रेस और अन्य राष्ट्रवादी ताकतों का एक बड़ा तबका गांधी की इस सुधारवादी मुहिम को लेकर संशय में था। उसे नहीं लगता था कि इस तरह के सुधार से हिंदू समाज में बड़ी एकता संभव हो सकेगी। उस समय के कुछ लोगों को, जो सुधारवादी नहीं थे, यह महत्त्वहीन और स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ भले नहीं लग रहा हो, पर इसे लेकर ब्रिटिश सरकार की चिंताओं का कोई अंत नहीं था। इस कार्यक्रम के विषय में गांधी जितनी ही सफाई देते थे कि यह एक गैर–राजनीतिक मुहिम है उतना ही इण्डिया आफिस इसके परिणाम को लेकर भयभीत होता था। ब्रिटिश सरकार यह समझती थी कि इस मुहिम से सामाजिक एकता सुदृढ़ होगी, जो स्वतंत्रता आंदोलन को समाज की गहराइयों तक ले जाएगी। परिणामस्वरूप आम जनता गांधी और कांग्रेस के पीछे उसके विरोध में लामबंद होगी। इतना ही नहीं इसके चलते कांग्रेस के अन्य गुटों और सहयोगियों में एकता और सामंजस्य बढ़ेगा, जिससे आने वाले दिनों में एक सशक्त संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा होगा, जो अब तक के सभी आंदोलनों से बड़ा होगा। यही कारण था जिससे ब्रिटिश सरकार अधिक चिंतित थी। पूना पैक्ट के लगभग 14 महीने बाद गांधी ने समाज सुधार की अपनी यह दूसरी मुहिम शुरू की। लेकिन इस दौरान वे अपने सहयोगियों, नेताओं से

और सभा–सम्मेलनों में लगातार छुआछूत के विरुद्ध चर्चा करते रहे, इतना ही नहीं, इसके विषय में बराबर लिखते भी रहे। असल में उन्होंने कई बार लोगों को बताया कि उस समय उनके चिंतन के केंद्र में छुआछूत का मुद्दा ही था। उन्होंने 'हरिजन' नाम का एक पत्र निकाला जो उनकी छुआछूत विरोधी मुहिम पर ही केन्द्रित था। पहले यह अंग्रेजी में निकला, फिर बाद में थोड़े–थोड़े अंतराल पर अन्य भारतीय भाषाओं–गुजराती, हिंदी, तमिल और बांग्ला आदि में भी निकला।

ह्वाइटहाल कार्यालय ने गांधी की इस मुहिम की विस्तृत जानकारी और उसके मूल्यांकन की रिपोर्ट प्राप्त करने का आदेश दिया। उसने अपने वायसराय और गवर्नरों से इस बात का आग्रह किया कि यह काम जितना संभव हो, दक्षता से किया जाए। अलग–अलग प्रांतों के मुख्य सचिवों द्वारा तैयार की गई यह रिपोर्ट अत्यंत ही विस्तृत थी। इसी तरह गृह विभाग की देख–रेख में एक अन्य रिपोर्ट भी जो जिलों से संबंधित कमिश्नर और सुपरिन्टेन्डेंट द्वारा तैयार करायी गई थी, अपने आप में विस्तृत रिपोर्ट ही थी। इस तरह ह्वाइट हाल में हफ्ते दर हफ्ते आने वाली फाइलों का अंबार लग गया था। इस तरह की फाइल दिल्ली में भी तैयार की गई होगी, पर ऐसी कोई सामग्री विशेषज्ञों के निरीक्षण के लिए राष्ट्रीय अभिलेखागार को उपलब्ध नहीं करायी गई। जैसा कि सभी जानते हैं कि इस तरह की खुफिया रिपोर्ट गोपनीय होती थी और उसे देखने का अधिकार मात्र इण्डिया कमेटी को होता था। रिपोर्टें जैसी उम्मीद की गई थी, सूचनाओं से भरी पड़ी थीं। हालांकि वे ऐसी नहीं थीं जिसे प्रेस के माध्यम से प्राप्त किया जा सके पर कांग्रेस के बाहर और भीतर या इसी तरह अन्य पार्टियों के बाहर और भीतर क्या हो रहा था, किस तरह का संघर्ष चल रहा था इनसे संबंधित पूरी की पूरी सूचनाएँ उसमें थीं। असल में ये रिपोर्टें इस बात की साक्षी हैं कि सरकार का सूचना इकट्ठा करने वाला तंत्र कितना बड़ा और शक्तिशाली था।

इस संग्रह में जो दस्तावेज उपलब्ध कराए गए हैं वह ब्रिटिश भारत और उससे लगी अधिकांश रियासतों में छुआछूत के विरुद्ध गांधी द्वारा चलाई गई मुहिम की ब्रिटिश सरकार द्वारा तैयार कराई गई खुफिया रिपोर्ट का हिस्सा हैं जो नवंबर अर्थात मुहिम 1933 से अगस्त 1934 तक के दायरे को समेटती है। यह लगातार चलने वाली मुहिम थी जो सप्ताह में किसी दिन मौन के साथ आरंभ होती थी। गरमी के दिनों में दिन में चार पांच घंटे के लिए आराम का समय था। अगर नहीं तो यह लगातार चलती रहती थी। मुहिम की शुरुआत दिन में सुबह की प्रार्थना या प्रभात फेरी से होती थी और यह देर रात तक चलती थी। कार और ट्रेन की यात्रा के समय स्टेशनों और सड़कों के किनारे लोगों की भारी भीड़ इकट्ठा हो जाने से कार्यक्रम संपन्न करने में देर हो जाती थी जिसमें गांधी जी के रात के सोने में अक्सर व्यवधान पड़ जाता था। पर इस प्रक्रिया में गांधी रास्ते में खड़े लोगों तक अपनी बात पहुँचाने की कोशिश करते थे। इतना ही नहीं छुआछूत उन्मूलन के लिए जो हरिजन कल्याण कोष बना था उसके लिए जितना हो सकता था उतना धन भी इकट्ठा करते चलते थे।

संग्रह में जो दस्तावेज उपलब्ध कराए गए हैं वे इस दृष्टि से महत्त्वहीन है कि वे मुहिम के दौरान गांधीवादी बहस का कोई निश्चित पाठ प्रस्तुत नहीं करते। उनके संकलित खंडों में (LIV से LVIII तक) उनकी बहस से संबंधित जो पाठ दिया गया है, चाहे वह मुहिम के तैयारीस्वरूप तैयार किया गया हो, चाहे दस महीने की यात्रा के दौरान उनके दिए गए भाषण हो या मुहिम के समापन के दौरान, वह अपने आप में संक्षिप्त ही नहीं बल्कि वक्ता के तर्कों के अनुरूप विधिवत संपादित भी हैं। यह खुफिया रिपोर्ट ब्रिटिश सरकार द्वारा तैयार कराई गई रिपोर्ट की तुलना में कहीं नहीं ठहरती। पर एक अन्य दृष्टि से इसका महत्त्व है।

भारत में गांधी का यह आंदोलन एक बड़ी ऐतिहासिक और सामाजिक घटना थी। इसने बड़ी सामाजिक उथल–पुथल को जन्म दिया। गांधी के इस क्रान्तिकारी और अपारंपरिक प्रस्ताव के प्रति समाज में तीखी प्रतिक्रिया हुई। कुछ लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया तो कुछ लोगों ने इसका जमकर समर्थन किया। कुछ लोग इसके प्रति उदासीन बने रहे तो कुछ लोगों ने इसे शंका की दृष्टि से भी देखा। इस दौरान हिंसा की कोई वारदात नहीं हुई, उन स्थानों पर भी नहीं जहां अक्सर हो जाया करती थीं। साल भरे चले इस आंदोलन में उपरोक्त भिन्न–भिन्न समूहों के बीच कटुतापूर्ण संघर्ष चला जिसे कुछ सिद्धांतकारों ने बनने वाले नए/पुराने राष्ट्र के सामान्य तत्व और साझी सांस्कृतिक एकता की संतति बताया। साल भर के इस आंदोलन ने एक ऐसे अवसर का निर्माण किया, जहां हमारे सामाजिक यथार्थ के अंतर्विरोध खुलकर सामने आ गए।

लोगों से मेरा तात्पर्य यहां बहुसंख्यक हिंदुओं से है, जो गांधी की नैतिक सत्ता पर शायद ही संदेह करते थे, यहाँ तक कि मुक्तिदाता के रूप में उनकी करिश्माई शक्ति पर भी उन्हें संदेह नहीं था। हिंदू समाज में सुधार के जिस उपचार को गांधी सुझा रहे थे उसकी व्यवहारिकता पर उन्हें संदेह था और खुद उसे अपनी निजी जिंदगी में उतारने के लिए तैयार नहीं थे। इस तरह की जानकारियां ब्रिटिश खुफिया रिपोर्ट में दर्ज हैं। इसी तरह के विषयों पर ब्रिटिश सरकार द्वारा तैयार किया गया दस्तावेज महत्त्वपूर्ण है। लेकिन ब्रिटिश सरकार की यह रिपोर्ट मात्र गांधी की इस विशेष मुहिम पर ही नहीं है जो अंततः असफल रही, बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन के आंतरिक अंतर्विरोधों और गुटबाजी को भी दिखाती है जैसा कि हम जानते हैं 1933 से 34 का वर्ष कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। यही वह वर्ष था जब मंदी के चलते पूरा विश्व आर्थिक संकट में था जिसका प्रभाव औपनिवेशिक देशों पर सर्वाधिक पड़ रहा था। परिणामतः आवश्यक रूप से सभी सामाजिक अंतर्विरोध और तीव्र हो गए थे।

गाँधी के क्रांतिकारी और मानवतावादी सुधार का सबसे अधिक विरोध रूढ़िवादी हिंदुओं की ही तरफ से था। जबकि गांधी ने हमेशा इस बात को कहा कि वे एक धार्मिक व्यक्ति होने के नाते हिंदू धर्म को कभी नहीं छोड़ सकते। उन्होंने अपने आप को सनातनी हिंदू कहा। आगे उन्होंने कहा कि छुआछूत से बड़ी बुराई विश्व में और कोई दूसरी नहीं है। हिंदू धर्म बिना इसे समाप्त किए जीवित रह ही नहीं सकता। उन्होंने कहा कि जो वास्तविक हिंदू धर्म है उसमें इस तरह की बुराई है ही नहीं। आगे उन्होंने इतना तक कहा

कि हिंदू धर्म में यह बुराई बनी रहे, इससे अच्छा है कि यह धर्म ही विनष्ट हो जाए। 21 दिन के छुआछूत के विरुद्ध अपने दूसरे उपवास (8 मई 1933 से 21 मई तक) के बाद उन्होंने अगले कार्यक्रम की घोषणा की। इसके बाद रूढ़िवादी हिंदुओं ने उन्हें हिन्दू धर्म का दुश्मन बताया और उन्हें अपना शत्रु घोषित किया। परिणामतः अपनी मुहिम के सिलसिले में वे जहां भी गये वहां उन्हें काले झण्डे दिखाए गए। उड़ीसा और बिहार में छिटपुट हिंसाएं भी हुईं। लेकिन गांधी ने अपने विरोधियों को अपने मंच से बोलने के लिए आमंत्रित किया। हालांकि वे मंच पर आए तो जरूर पर तार्किक रूप से अपनी बात नहीं रख पाए। अपने इस प्रयोग से गांधी जी अपने विरोध की तीव्रता को कमजोर करने में सफल रहे। पूना में एक कार पर यह समझकर बम फेंका गया कि गांधी जी इसमें यात्रा कर रहे हैं। इस बम काण्ड में सात लोग घायल हुए। इस घटना के बाद उन्होंने यह महसूस किया कि उन्हें अपर्याप्त और मात्र औपचारिक समर्थन ही मिल रहा है, तो उन्होंने इसे समाप्त करने की घोषणा कर दी। उन्होंने देखा कि हिंदुओं की मानसिकता में परिवर्तन के लिए एक बड़े संघर्ष की आवश्यकता है। रूढ़िवादी पार्टियां, अलग–अलग रूपों–सनातनी, सनातनधर्मी और वर्णाश्रम स्वराज संघ आदि के झंडे तले सक्रिय थीं। कभी वे केसरिया रंग में काम करती थीं तो कभी हिन्दू महासभा के कार्यकर्ता के रूप में कार्य करती थीं। वाराणसी में कुछ जगहों पर ये ताकतें स्वामी लोगों के नेतृत्व में भी काम कर रही थीं। अगर वर्णाश्रम स्वराज संघ जैसा संगठन इतना जल्दी इतने बड़े पैमाने पर फैल गया तो यह अचानक और अप्रत्याशित रूप से अस्तित्व में आया हुआ संगठन नहीं था। यह विचार सौ साल पुराना था जो बंगाल में नवजागरण के विरोध में पैदा हुआ था। अगर राजा राम मोहन राय और नवजागरण के अन्य नेताओं ने यह निर्धारित कर दिया कि पश्चिम की विचारधारा में नया और सकारात्मक क्या–क्या है जो देश के लिए आवश्यक है या इसी तरह अगर यंग बंगाल स्कूल द्वारा देशभक्ति के अनुसरण की बात करना स्वाधीनता के लिए नए भारत के निर्माण की आकांक्षा है, या स्वशासन की आकांक्षा है, तो इस पर पुनरुत्थानवादी हिंदुओं ने प्रतिप्रश्न किया कि फिर स्वाधीनता क्या है और किस लिए हम अपनी संस्कृति और सभ्यता के साथ बसे नहीं रह सकते। अर्थात जो हम हैं वह नहीं रह रह सकते तो फिर स्वाधीनता के क्या मायने? इसलिए, इनके लिए साम्राज्यवादी गुलामी से तब तक कोई विरोध नहीं था जब तक कि वह इन्हें अपनी संस्कृति और सभ्यता के साथ बिना किसी छेड़छाड़ के जीने देती। बंगाल में नवजागरण के आरंभ से ही इस तरह के प्रतिक्रांति के आंदोलन उठने लगे थे। यद्यपि दूसरे राज्यों में भी जहां सुधारवादी आंदोलन शक्तिशाली न थे, इस तरह के सुधारवाद विरोधी आंदोलन बड़े पैमाने पर पनपे।

ब्रिटिश दस्तावेज इससे कहीं अधिक जानकारी प्रदान करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि राष्ट्रीय आंदोलन में कई स्तरों पर अंतर्विरोध थे। जहां एक तरफ भारतीय लोकतंत्र के विस्तार कार्यक्रम को, या यूँ कहें कि भारतीय समाज के लोकतांत्रिक आधार को बढ़ाने वाले कार्यक्रम का दक्षिणपंथियों द्वारा कड़ा विरोध किया जा रहा था, तो वहीं दूसरी तरफ वे बड़ी राजनैतिक ताकतें जिन्हें वामपंथी कहा जाता था इस कार्यक्रम को लेकर सशंकित थीं या इसे संदेह की दृष्टि से देखती थीं। इतना ही नहीं इनमें से कुछ

लोगों ने तो गांधी पर यह आरोप भी लगाया कि वे साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन से पीछे हट रहे हैं। गांधी के प्रिय शिष्य जवाहरलाल नेहरू, जो उस समय जेल में थे गांधी के इस विचार को कि–'छुआछूत से बुरी चीज दुनिया में कोई नहीं है,' और गांधी उसे जिस तरह प्रस्तुत कर रहे थे बहुत हद तक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। ऐसा करने में उन्हें मूलभूत सैद्धांतिक कठिनाई महसूस हो रही थी। उनका विश्वास था कि छुआछूत के विरुद्ध गांधी की मुहिम के कुछ अच्छे परिणाम भी आये पर साम्राज्यवाद के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में इससे कोई ठोस मदद नहीं मिलेगी।

इस तरह के विपरीत माहौल के चलते गांधी ने कम से कम कांग्रेस पार्टी के आधे लोगों को ही तैयार करने की योजना बनाई। कांग्रेस की प्रांतीय कमेटियों के कई गुटों में विभाजित होने के कारण पूरी कांग्रेस को तैयार करना उनके लिए बड़ा मुश्किल था। लेकिन आज जब हम गांधी की मुहिम के साठ साल बाद देखते हैं तो हमें यह कहने में कोई परेशानी नहीं होती कि निम्न वर्ग के शोषण में जाति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है अछूतों के मामले में तो सबसे अधिक जिसे समझने में वामपंथियों ने बड़ी गलती की थी। इसके विपरीत गांधी ने वर्णाश्रम व्यवस्था को श्रम विभाजन के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वीकारते हुए भी समाज में व्याप्त छुआछूत को एक अमानवीय व्यवहार माना। इस तरह वे इसको लेकर वामपंथियों से कहीं अधिक संवेदनशील थे। गांधी ने ज्यों ही इस सामाजिक यथार्थ को समझा, खास तौर से डा. आंबेडकर और शोषित समाज के अन्य नेताओं से मिलने के बाद, त्यों ही उन्होंने मुहिम चलाने की सोच ली। ऐसी परिस्थिति में समाजवादियों के भिन्न–भिन्न समूह जो सामान्यरूप से वामपंथी विचारधारा को ही मानने वाले थे, भारत के सामाजिक यथार्थ को समझने के मुद्दे पर एक दूसरे के सहयोगी बनने के बजाय विरोधी बन गए। इसलिए ये लोग निम्न स्तर पर हो रहे जातिवादी शोषण की तीव्रता को समझने में असफल रहे। बीस साल बाद एक महत्त्वपूर्ण युरोपियन पत्रकार टिबोर मेंडे' को दिए गए अपने एक साक्षात्कार में नेहरू ने छुआछूत के प्रति गांधी के दृष्टिकोण को न केवल सही बताया बल्कि उसे अपने द्वारा प्रतिपादित भी बताया, जबकि 1933 और 34 में वे इसे नकार चुके थे। इतना ही नहीं उन्होंने यह कभी स्वीकार भी नहीं किया कि 1930 के दौरान उन्होंने गांधी के दृष्टिकोण के विपरीत गलत रुख लिया था।

बनारस में गांधी की मुहिम का समापन होने वाला था। यहीं 27 जुलाई 1934 को आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व में समाजवादियों का एक प्रतिनिधि मंडल गांधी से मिला। उन्होंने गांधी के समक्ष भविष्य के अपने कार्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत की और उस पर गांधी से अपनी राय मांगी, साथ ही कांग्रेस की नीतियों को समाजवादी सोच के अनुरूप कैसे बनाया जाए, इस काम के लिए भी गांधी से सहयोग की अपेक्षा की। अपनी व्यस्तताओं के बावजूद गांधी ने इसे ध्यानपूर्वक पढ़ा और बनारस छोड़ने से पहले 2 अगस्त को अपना दृष्टिकोण बताते हुए एक लंबा पत्र लिखा जो 'बाम्बे क्रोनिकल' में प्रकाशित हुआ। यह पत्र समाजवादी आंदोलन के इतिहास को समझने में अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। गांधी ने इसमें समाजवादी दस्तावेज के कई पहलुओं की आलोचना की है। यहाँ मैं उसकी

चर्चा कर विषयांतर नहीं करूंगा, पर इसमें की गई दो महत्त्वपूर्ण भूलों का जिक्र अवश्य करना चाहूंगा। ये दो भूलें थीं छुआछूत का उन्मूलन और साम्प्रदायिक एकता के छूट जाने की। दस्तावेज में इन दोनों का जिक्र कहीं नहीं था। समाजवादी आंदोलन के पुरोधाओं ने यह कैसा दस्तावेज तैयार किया था जिसमें छुआछूत और साम्प्रदायिकता की कोई चर्चा तक नहीं जिसके लिए गांधी ने दस महीने तक आंदोलन चलाया और जिसने पूरे देश को उद्वेलित कर रखा था। यह आश्चर्यचकित करने वाली बात ही नहीं थी बल्कि इससे समाजवादी विचारधारा किस तरह अव्यवहारिक और सैद्धांतिक हठधर्मिता के रूप में लगातार प्रस्तुत की जा रही थी, इसका पता चलता है। गांधी जी समाजवादियों को अपनी यह सलाह देते हुए पत्र को समाप्त करते हैं :

> मेरी राय में आज देश को वैज्ञानिक समाजवाद के अनुरूप नहीं, जैसा कि आपने अपने कार्यक्रम में प्रस्तुत किया है, बल्कि व्यावहारिक समाजवाद के अनुरूप प्रस्तुत करना चाहिए। मुझे इस बात की खुशी है कि जो प्रारूप आपने मुझे दिया है वह बड़े प्रभावी लोगों की कमेटी द्वारा तैयार किया गया है जो विशेष तौर से इसी के लिए बनी थी। फिर भी यह अच्छा होगा कि जब आप इसे अंतिम रूप दें तो उन लोगों के सहयोग को भी लें जिनका झुकाव समाजवादी विचारधारा की तरफ है और जिन्हें समाज की वास्तविक स्थिति का अनुभव है।

गांधी ने अपनी मुहिम में देश के सर्वाधिक शोषितों के समर्थन का आह्वान किया था जिन्हें स्वाधीनता आंदोलन के वे लोग जो अपने आपको आधुनिक और क्रान्तिकारी कहते थे, समझने में असफल रहे। आखिर क्यों? यहां तक कि समाज में कौन सर्वाधिक शोषित तबका है उसे पहचानने में भी वे असफल रहे। इतना ही नहीं, ये लोग गांधी के दस महीने तक चले सफल जन आंदोलन के बाद भी इसे समझने में असफल रहे जिसने जनता को उद्वेलित कर रखा था और जिसे इस प्रक्रिया के दौरान हिंदू समाज में उपस्थित प्रतिक्रियावादी ताकतों से सीधे–सीधे मुकाबला करना पड़ा था, उस आंदोलन के साथ खड़े होने में वे असफल रहे। आखिर क्यों?

मैं समझता हूँ यह हमारे इतिहास लेखन की सबसे बड़ी कमी है जिस पर अभी तक बिल्कुल ही सोचा नहीं गया है। कुल मिलाकर वामपंथी विचारधारा के लोगों ने वर्ष 1933 में गांधी की मुहिम को बहुत ही गलत ढंग से प्रस्तुत किया। सुभाषचंद्र बोस और विट्ठल भाई पटेल ने गांधी को वियना से इस आशय का एक टेलीग्राम भेजा कि वे उनकी मुहिम के साथ नहीं है। हालांकि, गांधी की मुहिम की इन लोगों ने स्पष्ट रूप से आलोचना नहीं की। गांधी जी के साक्षात्कार के एक अद्भुत दस्तावेज से जिसे उन्होंने 1931 में लंदन में एक अंतर्राष्ट्रीय वामपंथी छात्रों के प्रतिनिधि मण्डल को दिया था, इस बात की जानकारी मिलती है कि किस तरह कोमिटंर्न (Comintern) के लोग गांधी' के विरोधी थे। साक्षात्कार से इस बात की जानकारी मिलती है कि किस तरह कम्युनिस्ट पार्टी के लोग भी गांधी की मुहिम के विरोधी थे। गांधी की मुहिम की वामपंथी आलोचना का मुख्य आधार यह था कि इससे साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध चल रहे संघर्ष को धक्का पहुँचेगा। अगर ऐसा है तो

वामपंथियों के इस मूलभूत विचार का क्या होगा कि किसी भी मुक्तिकामी आंदोलन के लिए आम जनता को एक बड़ी ताकत के रूप में तैयार करने का सूत्र कमजोर वर्गों के असंतोष में निहित है जो उनकी दयनीय आर्थिक और सामाजिक स्थितियों से पैदा हुआ रहता है! क्या यह आश्चर्य करने वाली बात नहीं है कि भारत में जाति के नाम पर जो घोर शोषण हो रहा था जो साफ–साफ दिख रहा था इन लोगों में से कोई एक भी उसे पहचान नहीं सका। अंततः यह समस्या गांधी के हवाले कर दी गई कि वे ही इनसे निपटने का कोई सिद्धांत विकसित करें। गांधी ने ऐसा किया भी। उन्होंने जो सिद्धांत विकसित किया और उस पर उन्होंने जो बहस खड़ी की उसके आधार एक तरफ धार्मिक और भारतीय थे तो दूसरी तरफ सत्य के प्रति उनकी पूरी निष्ठा जो उन्हें इस बात के लिए प्रेरित कर रही थी कि जो कुछ भी अन्याय उनके समक्ष हो रहा है उनकी तरफ वे ध्यान दें।

इसके विपरीत वामपंथी लोग मार्क्सवादी फार्मूले के तहत एक तथाकथित सर्वहारा वर्ग के पैदा होने की कल्पना कर रहे थे, पर उन्हें नकार कर जो सबसे अधिक शोषित और दलित थे जो संभव हो भी सकता था और नहीं भी। इस ऐतिहासिक अवसर पर वामपंथ की असफलता मध्यम वर्ग की असफलता थी जिसके पास न तो पर्याप्त शिक्षा थी और न ही पर्याप्त क्रान्तिकारी सोच। ऐसी स्थिति में वे एक उधार की ली गई क्रांतिकारी और समाजवादी विचार धारा को एक प्रभावी राजनैतिक औजार के रूप में उपयोग करने में असफल रहे। इससे भी ज्यादा वे भारतीय समाज को समझने और व्याख्यायित करने में असफल हुए।

गांधी ने छुआछूत की समस्या को दो अलग–अलग रूपों में ग्रहण किया। एक स्तर पर उन्हांने उच्च जाति के लोगों से आहवान किया कि वे अपना हृदय परिवर्तन कर अछूतों के प्रति संवदेनशीलता का परिचय दें। उन्होंने कहा कि सदियों से यह बुराई हिंदुओं के एक रिवाज के रूप में कुछ लोगों पर लादी गई है जिससे हिंदुओं को बड़ा लाभ हुआ है। अब उन्हें इसका प्रायश्चित करना चाहिए। दूसरे स्तर पर उन्होंने इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन किया कि हिंदू धर्म में छुआछूत से त्रस्त लोगों की वर्तमान स्थिति उनके पूर्व जन्मों के पापों का फल है। इस स्तर पर उनकी अधिकांश बहसों को शुद्ध रूप से धार्मिक और आध्यात्मिक कहा जा सकता है जिसमें उपर्युक्त दोनों बातें मुख्य थीं। उन्होंने अछूतों को साफ सुथरा रहने, गाय और सड़ा गला मांस न खाने, शराब न पीने, शिक्षा ग्रहण करने और स्वयं में सुधार कर एक नैतिक जीवन जीने की सलाह दी। असल में उनकी मुहिम का उद्देश्य हिंदुओं के लिए आध्यात्मिक प्रायश्चित करने और हिंदू समाज का प्रेम और भाईचारे के साथ–साथ नैतिक आधार पर पुर्नगठन करने का था। जब उन्होंने हरिजन कोष के लिए धन इकट्ठा करने की मुहिम चलाई तो यह भी प्रायश्चित करने के रूप में ही थी। इसके अतिरिक्त जिन दूसरे स्तर पर उन्होंने बहस चलाई वह पूरी तरह अधार्मिक, पंथ निरपेक्ष और सामाजिक थी, और अपने आप में पूर्ण थी। भारत लोकतांत्रिक नागरिकता के आधार पर पूर्ण स्वराज के लिए संघर्ष कर रहा था जो सबके लिए न्याय, सम्मान, समानता और भाईचारे को सुनिश्चित करती थी। कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का साझा मंच

थी। यह भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था थी। उस समय की जितनी भी चुनी हुई संस्थाएं थीं उनमें कांग्रेस और उसके सहयोगियों की संख्या ही अधिक थी। गांधी ने इन लोगों से कहा कि वे एक सामान्य नीति बनाकर छुआछूत उन्मूलन के विरुद्ध अपने उद्देश्यों को पूरा करें क्योंकि ऐसा करना उनका कर्त्तव्य है। गांधी ने इस बात पर जोर दिया कि उन सभी नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों में जिनमें कांग्रेस का बहुमत है, वहां जितने भी अछूत वर्ग के कर्मचारी काम कर रहे हैं उनके साथ हो रहे भेदभाव को रोका जाए। और उनके लिए न्यूनतम् मजदूरी, साफ–सुथरे कपड़े, रहने लायक साफ सुथरा मकान, रात्रिकालीन विद्यालय और स्वास्थ्य केंद्र आदि की व्यवस्था के साथ उनके आसपास स्थित शराब की दुकानों को बंद कराया जाए, आदि। पर गांधी की पहले स्तर की बहस का विरोध कट्टरपंथी हिंदुओं ने किया और दूसरे स्तर की बहस का विरोध समाज के कुछ निहित स्वार्थ के लोगों ने। इस विरोध को कुछ हद तक समझा जा सकता है। पर वामपंथियों ने भी गांधी के दूसरे स्तर की बहस का विरोध किया, यह आश्चर्यजनक था। इस तरह अधिकांश मामलों में गांधी के साथ यही सब हुआ।

अधिकांश वामपंथियों की एक भ्रांतिपूर्ण धारणा यह थी कि उन राष्ट्रवादियों का जो निर्वाचित सार्वजनिक संस्थाओं में हैं मुख्य काम साम्राज्यवादी ताकतों का विरोध करना होना चाहिए। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि उनके लिए अन्य चीजें कम महत्त्वपूर्ण हो जाएँ। राजनैतिक स्तर पर इस तरह के भ्रम और तमाम वैचारिक घालमेल के साथ एक बड़ा बौद्धि क खोखलापन और दिवालियापन प्रायः कांग्रेस के उन सभी नेताओं में था जो अपने आपको आधुनिक कहते थे। यहां तक कि तथाकथित रेडिकल और वामपंथी भी वर्ष 1933–34 के दौरान गांधी के विषय में एकतरफा होकर ये सब कहे जा रहे थे कि वे विदेशी ताकतों से संघर्ष करने की बजाय समझौते का रास्ता अख्तियार कर रहे हैं, आदि। इसके तुरंत बाद वर्ष 1935 में 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट' आया, जिसकी आलोचना अधिकांश कांग्रेसियों ने नहीं की जिसके कारण अंततः वह स्वीकार कर लिया गया। एक सोची समझी रणनीति के तहत वामपंथियों ने भी इसकी आलोचना नहीं की। ऐसा इसलिए कि कुछ व्यावहारिक परिस्थितियों के कारण उस समय वामपंथी लोग स्थितियों का सिंहावलोकन करते हुए जान पड़ते थे।

इस समय कांग्रेस के समक्ष पहला प्रश्न यह था कि वह चुनाव में भाग ले या न ले। शुरू में व्यापक विरोध के बावजूद यह कहा गया कि कांग्रेस को चुनावों में भाग लेना चाहिए। इसलिए कि यह चुनाव बहुत बड़ा है जिसमें भाग लेकर कांग्रेस बड़े पैमाने पर लोगों तक अपनी नीतियों और विचारों को पहुँचा सकती है। चुनाव में कांग्रेस ने भाग लिया और उसका प्रदर्शन अप्रत्याशित रूप से अच्छा रहा। लेकिन पुनः कुछ रेडिकल लोगों ने मंत्रि परिषद में हिस्सा लेने का विरोध किया जिससे उसके निर्माण में कई महीनों तक की देरी हुई। एक बार फिर जब बहुसंख्यक विधायकों ने मंत्रिपरिषद के निर्माण के लिए दबाव बनाया जिसे पहले तो दक्षिणपंथियों की तरफ से बनाया हुआ दबाव बताया गया यद्यपि कि एक साल बाद तक कोई यह नहीं जान पाया कि कौन लोग दक्षिणपंथी हैं और किस

तरह के कार्यक्रम के आधार पर वे वामपंथियों से अलग हैं, लेकिन जब हाई कमान ने मंत्रि परिषद के गठन की इजाजत दे दी तो पुनः वामपंथियों ने इस बात की घोषणा कर दी कि वे मंत्रिपरिषद में इसलिए शामिल हो रहे हैं कि वे अंदर रहकर संविधान की रक्षा करेंगे।

यह अवसर उपरोक्त प्रश्नों की तह में जाने का नहीं है। लेकिन कम से कम इतना समझ लिया जाए कि ये जो तथाकथित रेडिकल थे क्या वे उपनिवेशवादी शासन के अंतर्गत सीमित शक्ति वाले मंत्रिपरिषद के गठन का विरोध कर साम्राज्यवाद विरोध और आम जनता के समर्थन की नीति का अनुसरण कर रहे थे? असल में ऐसा कुछ नहीं था। उस दौरान ज्यों ही कांग्रेस मंत्रिमंडल अस्तित्व में आया त्यों ही कांगेस की प्रांतीय और जिला स्तर की कमेटियों ने हाई कमान के निर्णय के अनुरूप यह तय किया कि वे गांधी के द्वारा चलाए जा रहे रचनात्मक कार्य से अपने आपको दूर रखेंगी। हालांकि यह निर्णय बहुत ही कूटनीतिक और शालीन तरीके से लिया गया। इस संदर्भ में यह कहा गया कि गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम को जिले और प्रांतीय स्तर की कांग्रेस कमेटियों के स्थान पर एक नया संगठन चलाएगा, इसलिए कि ये कमेटियां अब सरकार के रोजाना के नए कार्यक्रमों में व्यस्त होंगी।

यह ध्यान देने वाली बात है कि वर्षों की अंतर्राष्ट्रीय मंदी के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था (यहां तक कि कृषि क्षेत्र भी) विकास के अपने न्यूनतम स्तर पर आ गयी थी। वर्षों की धीमी वसूली और बड़े पैमाने पर विदेशी पूंजी निवेश की कोई संभावना न होने के कारण निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था आगे और लड़खड़ाती और अपने सामान्य स्तर पर आने के लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ता। ऐसी स्थिति में गांधी के 'सेल्फ हेल्प' जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों से निम्न स्तर पर अर्थ व्यवस्था को सुधारने में मदद मिल सकती थी। दुर्भाग्य से उस समय किसी एक व्यक्ति ने भी गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम के महत्त्व को पूरी तरह नहीं समझा चाहे वे वामपंथी हो, चाहे रेडिकल हों या आधुनिकतावादी, किसी ने भी नहीं। गांधी ने नरेन्द्रदेव को जो पत्र लिखा था जिसका कि पहले जिक्र किया गया है और जिसमें उन्होंने समाजवादियों की दो भूलों की बात की थी, उसी पत्र में गांधी ने एक और पीड़ा जोड़ने को कहा था, "खद्दर को आम जनता की पहचान बनाना ताकि वे लाखों–लाख लोग जिन्हें साल में चार या छ महीने ही रोजगार मिलता है, उनके लिए उस समय तक जब तक अच्छा रोजगार नहीं मिल जाता तुरंत रोजगार की व्यवस्था हो सके।" यानि कि समाजवादी दस्तावेज में खद्दर का भी कोई जिक्र नहीं था।

गांधी की स्वाधीनता की अवधारणा राष्ट्र के प्रति स्वामी–भक्ति की थी जिससे 'धार्मिक कर्त्तव्य' की हिंदू अवधारणा की प्रतीति होती है। हालांकि, इन दोनों से वे अलग थे पर गोखले के अधिक करीब माने जा सकते हैं। किसी भी तरह के अर्थपूर्ण विकास के लिए सामाजिक सुधार एक प्राथमिक जरूरत है जिसे गांधी ने पहचाना। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि पूंजीवादी समाज के पहले के समाज में जो बड़े पैमाने पर कृषि प्रधान और धार्मिक होता है, प्रभावी समाज सुधार के लिए जरूरी है कि इसकी शुरूआत धर्म सुधार से की जाए। इसलिए कि उस समय धर्म ही बड़े पैमाने पर समाज को संचालित कर रहा

होता है। उसी की समाज पर पकड़ होती है। गांधी की 'मदर इण्डिया' के प्रति समर्पण के विचार को कुछ विद्वान हिंदू देवी देवताओं की पूजा–आराधना कह सकते हैं। लेकिन यह केवल अपनी अस्मिता को देखने का मात्र एक रूप है। गांधी के स्वाधीनता आंदोलन की अवधारणा का मुख्य तत्व नैतिक आग्रह का था जिसे वे व्यक्ति का एक कर्त्तव्य समझते थे।

यह भी एक ध्यान देने वाली बात है कि गांधी की इस मुहिम में हरिजनों के मंदिर प्रवेश करने की बात नहीं थी। मंदिर प्रवेश के उनके चर्चित कार्यक्रम या तो उनकी इस मुहिम के पहले के हैं या तो इसके बाद के। असल में गांधी ने अपनी मुहिम के दौरान यह बार–बार कहा कि हरिजनों के मंदिर प्रवेश का मसला या तो उन बोर्डों और समितियों के बहुसंख्यक लोगों के निर्णय पर छोड़ दिया जाए जो मंदिरों का प्रशासन चलाते हैं या उन बहुसंख्यक लोगों के निर्णयों के ऊपर छोड़ दिया जाए जो मंदिरों में पूजा अर्चना के लिए आते हैं। बेशक, वे ऐसा करते हुए सवर्ण समाज के हृदय परिवर्तन का प्रचार कर रहे थे। लेकिन किसी विशेष मंदिर में प्रवेश का निर्णय उसमें पूजा–अर्चना करने वाले सवर्ण लोगों पर छोड़ देने का विचार महत्त्वपूर्ण है। इसलिए कि अगर इस प्रक्रिया से मंदिर प्रवेश संभव होता है तो सही मायने में यह हृदय परिवर्तन होगा। और इसी तरह अछूतों के मंदिर प्रवेश की समस्या स्थायी रूप से हल हो सकती है। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने हरिजनों के साथ अनुष्ठानिक रूप से कई मंदिरों में प्रवेश किया, पर उन्हीं मंदिरों में जो या तो हरिजनों के लिए बनाए गए थे या उन बहुत पुराने मंदिरों में जिनमें प्रवेश के लिए स्थानीय स्तर पर संघर्ष चलाया जा चुका था। इस तरह के मंदिर प्रवेश के कार्यक्रम में गांधी की सहभागिता मात्र प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए होती थी।

गांधी की इस मुहिम को समग्रता में कैसे समझा जाए? मेरी समझ से इसके अलग–अलग तीन आयाम हैं। निश्चित रूप से पहले भक्ति आंदोलन को लिया जा सकता है जिसमें संतों ने हरिजनों के दुःखों को पूरी संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया। गांधी ने इसे नए सिरे से और थोड़ा नए ढंग से प्रस्तुत किया। दूसरा आयाम यह है कि हिंदुओं में सुधार और उनकी एकता के विचार के लिए जरूरी था कि निम्न जाति के प्रति अमानवीय भेदभाव को तुरंत समाप्त किया जाय और अद्वैत के समर्थकों के, जो गांधी स्वयं थे, तथा आम हिन्दू जो पारंपरिक रीति रिवाजों के अनुरूप आचरण करता है के बीच भी एकता कायम की जाए। गांधी की यह बहस राजा राममोहन राय और उनके जैसे अन्य समाज सुधारकों के अनुरूप थी। लेकिन इसके विपरीत वे अपने गुजराती भाई दयानंद सरस्वती और अन्य हिन्दू पुनरुत्थानवादियों की सोच से दूर खड़े थे। गांधी धार्मिक बहस की अपनी मुहिम में इस बात को लेकर पूरी तरह सतर्क थे कि वे मुसलिम विरोधी, क्रिश्चियन विरोधी या तथाकथित विदेश विरोधी जैसी मानसिकता से मुक्त हों। उनका एक सामान्य–सा फार्मूला था कि मूल पाठ में वह सब कुछ जो जीवंत, उत्कृष्ट और सच है उसको पुनर्जीवित करना और जो कुछ बुरा है जो इतिहास की लंबी प्रक्रिया में पैदा हो गया है उसे अलग करना। इसके साथ ही साथ वे सब चीजें जो अच्छी हैं, सत्य हैं फिर वे चाहे किसी भी देश से आएं, उन्हें स्वीकार करना।

गांधी की बहस का तीसरा आयाम था आधुनिक लोकतंत्र। यह विचार भी विदेशी था। लेकिन गांधी इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते थे कि किसी विशेष सच को हमारे लोग किस तरह और किस रूपक में ग्रहण करेंगे। फिर चाहे वे ईसाइयत का मानववाद हो या फिर रूढ़िवादी परंपराओं को झकझोर देने वाले विचार। गांधी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि सत्य के बहुत से तत्व उन्होंने पश्चिम से लिए हैं, वैसे ही जैसे अपने आश्रम के लिए उन्होंने अपने जिन धार्मिक विचारों और कार्यक्रमों का निर्माण किया था उनमें से अधिकांश इस्लाम और पारसी धर्म से लिए गए थे। लेकिन साथ ही साथ इस बात को लेकर वे पूरी तरह सचेत थे कि अगर इस देश के लोग यह समझ जाएं कि गांधी पश्चिम के विचारों को सीधे–सीधे उनके समक्ष रख रहे हैं तो आम लोगों तक उनके पहुँचने की शक्ति अगर पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाती तो कम से कम क्षीण तो जरूर हो जाती। इस संदर्भ में एक बात यह कही जा सकती है कि वे राजा राम मोहन राय के चिंतन एवं कार्यों के पूरी तरह प्रशंसक होते हुए भी कभी–कभी उनकी आलोचना करते थे। पर उनकी यह आलोचना राजा राममोहन राय के किसी स्वयं की असफलता के विशेष संदर्भ में ही होती थी। इससे अधिक नहीं। इसलिए गांधी पश्चिमी विचारों को आत्मसात् करने में थोड़ा समय लेते थे और जब एक बार आत्मसात् कर लेते थे तो उसे पूरी तरह देश की भाषा और मुहावरों के अनुरूप ढालकर जनता के सामने प्रस्तुत करते थे।

गांधी के लोकतंत्र की अवधारणा चाहे वह देश की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के उद्देश्य से बनी हो या सामाजिक उत्थान के, उनके लिए एक शक्ति का स्रोत थी जिसमें लोगों का पूरा विश्वास था। लोकतंत्र में गांधी की असीमित और अगाध श्रद्धा थी और उसे लेकर वे बहुत आशावादी भी थे। इससे भी अधिक लोकतंत्र ने गांधी को रणनीति बनाने में बड़ी मदद की। पारंपरिक राजनैतिक सिद्धांत के अनुसार लोकतंत्र विकास की एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में आगे बढ़ता है और समाज के कुछ समूहों में चेतना पैदा करता है और बाद में यही समूह सत्ता या निहित स्वार्थ वाले शासन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए लोगों को तैयार करते हैं। संघर्ष की यही प्रवृत्ति वामपंथियों और रेडिकल लोगों के सोचने की योजना में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। दो शताब्दियों का यूरोपियन इतिहास संघर्ष के उपरोक्त संदर्भों में ही व्याख्यायित किया गया है। पर गांधी ने बदलाव के लिए संघर्ष के विचार को कभी महत्त्वपूर्ण नहीं माना। इसके बदले, विशेष रूप से ब्रिटेन के कानून के शासन की शांतिपूर्ण प्रक्रिया में उनका विश्वास था। उनका मानना था कि अहिंसा और सत्याग्रह के प्रशिक्षण से लगातार और स्थायी रूप से विकसित होने वाली लोगों की चेतना बदलाव के लिए इस मान्यता को कि वह टकराव के द्वारा ही संभव है, क्षीण कर देती है और एक निश्चित पड़ाव पर आने के बाद पूर्ण विजय स्वयं ही संभव हो जाती है। अपने विचार के विकास की प्रक्रिया में गांधी के पास कई आदर्श विचारक थे। इस क्रम में हम थोरो (Thoreau) टालस्टाय और रस्किन का नाम ले सकते हैं, मज्जिनी (Mazzini), क्रोपोटकिन (Kropotkin) और विलियम मोरिस (William Morris) का नाम ले सकते हैं, पर क्या मार्क्स का नाम ले सकते हैं? निश्चय ही नहीं, पर इसलिए नहीं कि गांधी ने भारत के तथाकथित मार्क्सवादियों से मार्क्स को कम पढ़ा था।

छुआछूत विरोधी अपनी मुहिम में गांधी ने दूरगामी प्रभाव की दो रणनीतियां तैयार की थीं। एक तो हिंदुओं को इस बात के लिए प्रेरित करना कि वे प्रायश्चित करते हुए अछूतों को अपने साथ जोड़ें और दूसरे हरिजनों को भी इस बात के लिए प्रेरित करना कि वे चेतना संपन्न बने और अपने प्रयासों से धन, शिक्षा और सम्मान अर्जित करने का प्रयास करें। साथ ही एकजुट होकर उस समय तक संघर्ष करें जब तक हिंदू समाज उन्हें सम्मान प्रदान नहीं करता जिसके कि वे हकदार हैं।

एक बार जब उन्होंने हिंदू समाज की एकता की रक्षा की चुनौती को स्वीकार कर लिया तो यही काम उनकी गतिविधियों के केन्द्र में आ गया। यह हो सकता है कि आरंभ में वे इस काम की तरफ अपनी राजनैतिक जरूरतों के चलते ही प्रेरित हुए हों, पर वे जल्दी ही समझ गए कि हिंदू समाज में एकता जैसी कोई चीज नहीं जिसकी रक्षा की जा सके। असल में यह पहले से ही अपने कई मुख्य आधारों पर, ब्राह्मण–गैर–ब्राह्मण, सवर्ण–अवर्ण, और छूत–अछूत में बंटा हुआ है। इसके अलावा अन्य कई न दिखने वाले विभाजन भी समाज में हैं। जैसे ही इस समस्या से जूझने की उन्होंने शुरुआत की वैसे ही वैसे वे उसमें फंसते चले गए। यह कहने में कोई दिक्कत नहीं कि यह मुद्दा उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया, जिसने उनके विचार और समझ को गहराई तक प्रभावित किया। इसने गांधी को भारत के समाज और इतिहास को नए ढंग से देखने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके पहले शायद ही उनके जीवन में ऐसा कुछ हुआ हो। आंबेडकर के साथ जितना ही उनका वाद और संवाद बढ़ा गांधी का उनके प्रति व्यवहार मित्रवत् होता गया हालांकि हिंदू समाज की समझ को लेकर दोनों में मतभेद भी था। पर इसकी व्याख्या रोग के पहचान और निदान को एक साथ स्वीकारने के रूप में की जा सकती है। अछूत वर्ग से आने वाले नेताओं के कार्यों के पूरी तरह सहयोगी और प्रशंसक होने के बावजूद गांधी बार–बार यह शिकायत करते थे कि आखिर आंबेडकर और अन्य कार्यकर्त्ता हिंदू समाज की ज्यादतियों को लेकर इतने क्रोधित, इतने कटु और उनके इतने विरोधी क्यों हैं? विशेष रूप से हिंदू सुधारवादियों के इस आश्वासन को लेकर कि निकट भविष्य में वे अपना सुधार करेंगे, अछूत वर्ग से आने वाले नेताओं के अविश्वास की प्रवृत्ति को लेकर। इस प्रसंग को, गांधी और आंबेडकर के उस पत्राचार में देखा जा सकता है जो उस समय हुआ था जब गांधी ने 'हरिजन' के पहले अंक के लिए डा. आंबेडकर से संदेश के रूप में एक लेख की मांग की थी और जिसे डा. आंबेडकर ने विनम्रतापूर्वक दे भी दिया था।

उस समय और उसके कुछ समय बाद तक डा. आंबेडकर का गांधी से मुख्य सैद्धांतिक विरोध वर्णाश्रम व्यवस्था को लेकर था। डा. आंबेडकर वर्णाश्रम व्यवस्था की आलोचना करते हुए इसे तुरंत समाप्त करने का आग्रह करते थे। जबकि गांधी का यह विश्वास था कि यह व्यवस्था श्रम के सामाजिक विभाजन पर आधारित है जिससे समाज के विभिन्न जातीय समूहों को इकट्ठा रखने में मदद मिलती है। और जिसमें लोग अपने पैतृक पेशों से बड़ी संख्या में जुड़े रहते हैं। लेकिन वहीं इसके विपरीत उनका एक दूसरा विचार भी है जिससे मालूम पड़ता है कि अगले आठ दस वर्षों में उनकी राय बदल चुकी थी।

उनकी बहस का मुख्य तत्व उपरोक्त तीनों आयामों का मिश्रण था। बेशक, जैसा कि हम जानते हैं उनकी मुहिम सफल नहीं हो सकी। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वह इसलिए सफल नहीं हो सकी कि गांधी ने इसके लिए कोई मेहनत नहीं की या उनके विचार प्रभावी नहीं थे। बल्कि यह असफलता भारत के लोगों की थी जो हिंदू समाज की रूढ़िवादी ताकतों और निहित स्वार्थों से ग्रस्त लोगों पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। सामान्य रूप से यह राजनैतिक संस्थाओं की और मुख्य रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की असफलता थी। और विशेष रूप से कहा जाए तो कांग्रेस के उन सहयोगियों की वजह से यह असफल हुआ जो रेडिकल और वामपंथी थे जिन्होंने गांधी की मुहिम को पूरी तरह सहयोग नहीं किए। गांधी की मुहिम के साठ साल हो गए पर उसका उद्देश्य पूरा होना अभी शेष है।

गांधी की छुआछूत की मुहिम में एक बड़ा और स्पष्ट मुद्दा हिंदू–मुसलिम रिश्ते का था। उनका कहना था कि छुआछूत के उन्मूलन से हिंदू–मुसलिम रिश्ते को सुधारने में मदद मिलेगी। ''अगर छुआछूत हिंदू धर्म से समाप्त हो जाती है तो दूसरी बहुत सी समस्याएं अपने आप हल हो जाएंगी। इससे हिंदू मुसलिम समस्या स्वतः ही हल हो जाएगी, क्यों कि इसके मूल में ऊँच–नीच की भावना ही है।'' इस संदर्भ में उन्होंने निम्न तीन बातें कहीं

1. हिंदू धर्म छुआछूत को समाप्त करने में पूरी तरह सक्षम है। ऐसा करने से उसका गौरव पुनः बढ़ेगा। परिणामतः भारतीय मुसलमानों में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।
2. इस तरह का प्रगतिशील कार्य हिन्दुओं में आत्मविश्वास की भावना भरेगा।
3. सर्वाधिक लोकतांत्रिक और संगठित समाज अपने मुसलिम भाइयों और पड़ोसियों से बिना किसी आग्रह के संवाद स्थापित करने में सहायक हो सकेगा।

कई ऐतिहासिक कारणों से बंगाल और देश के अन्य तटवर्ती इलाकों में जहां पश्चिम का प्रभाव बहुत लंबे समय तक रहा वहां छुआछूत के विरुद्ध मुहिम की केन्द्रीय विचार धारा मजबूत बनी रही। हालांकि, कई स्तरों पर उसने अपने आपको बदला, लेकिन बदलाव के हर स्तर पर उसने अधिक से अधिक स्थानीय स्वरूप ग्रहण किया जिसके कारण यह मुहिम और मजबूत हुई। देश के कई सुदूर और उत्तर क्षेत्र में सुधारवाद विरोधी आंदोलन वास्तविक सुधारवादी आंदोलनों की तुलना में शक्तिशाली था। इसलिए ये सुधारवाद विरोधी आंदोलन यहां प्राथमिकता प्राप्त कर गए। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उत्तर भारत में छुआछूत की भावना दक्षिण की तुलना में अधिक थी। इसके विपरीत दक्षिण भारत में छुआछूत की भावना उत्तर भारत की तुलना में अधिक थी और अपने निकृष्टतम् रूप में थी। क्योंकि यहाँ यह मात्र अछूतों और हिंदुओं के बीच तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि ब्राह्मण ों और गैर–ब्राह्मणों के बीच में भी थी। दक्षिण में जातिवाद की भावना के अधिक होने के कारण ही वहां ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन पहले चला। दक्षिण में यह गांधी के आंदोलन

से, जिसे उन्होंने प्रेसीडेंसी एरिया में शुरू किया था, एक दशक पुराना हो चुका था, जिसने सामाजिक संतुलन बनाने में मदद की। शायद यही इस क्षेत्र का सामाजिक–ऐतिहासिक आधार है जिसके कारण इसे 'काउ बेल्ट' के रूप में चिन्हित नहीं किया जाता।

सुधारवादियों के पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों को स्वीकार करने से पुनरूत्थानवादी अत्याधिक परेशान थे। उनका कहना था कि पश्चिम के तथाकथित सांस्कृतिक मूल्यों को बड़े पैमाने पर हिंदू संस्कृति पर लादा जा रहा है और उसमें मिलाया जा रहा है। बाद में अगर असली भारत की पहचान करनी हो तो उसकी खोज कैसे की जाएगी? पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को किस तरह हटाया जाएगा और किस हद तक पुनरुत्थानवादी लोग हटाने की इस प्रक्रिया को चलाएंगे? यहां इन प्रश्नों का जिक्र करना जरूरी है क्योंकि इनसे गांधी को समझने में मदद मिलती है। गांधी ने इस बात की जरूरत कभी नहीं महसूस की कि पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों को हटाया जाए जिनसे देश में एक सामासिक संस्कृति का निर्माण हुआ है और जिसे गांधी भारत की आत्मा कहते थे। भारत में सामासिक संस्कृति और छुआछूत के विरुद्ध गांधी के आंदोलन के संदर्भ में उनके वैचारिक संघर्ष को देखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता है कि गांधी ने सभी विचारों को अंतर मिश्रित कर दिया था जिसे रवीन्द्र नाथ टैगोर की दो चर्चित कविताओं के माध्यम से समझा जा सकता है जिसका शीर्षक है "भारत तीर्थ" और "हे मोर दुर्भागा देश", दोनों 1913 में एक हफ्ते के अंतराल पर लिखी गई थीं और जिन्हें अनूदित कर हरिजन में प्रकाशित किया गया था। अन्य लोगों की तुलना में शायद टैगोर गांधी की मुहिम से अधिक प्रभावित थे।

अंत में समाज सुधार की इस मुहिम को महिलाओं का असाधारण सहयोग मिला हालांकि, इसके लिए विशेष प्रयास नहीं किए गए थे। इसलिए यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि गांधी के ज्यादातर बड़े आंदोलनों में चाहे वह असहयोग आंदोलन रहा हो या इस सिविल नाफरमानी का जिसमें पूरे प्रदेश से महिलाओं की सहभागिता का अनुपात पर्याप्त होने पर कुछ लोगों ने इन आंदोलनों की प्रशंसा की थी। गांधी के हिंदू समाज के मूलभूत सुधार की इस मुहिम में तो महिलाओं की भागीदारी सर्वाधिक थी! गांधी जी ने महिलाओं से, विशेष रूप से उन महिलाओं से, जो पारंपरिक रीति रिवाजों और संस्कारों का पालन करती थी, प्रत्यक्ष रूप से कहा कि वे इसे छोड़ दें। छुआछूत की अमानवीय और भयानक प्रथा के विरुद्ध अपनी बात को रखते हुए उन्होंने कहा कि सवर्ण हिंदू प्रायश्चित करते हुए इसे छोड़ दें और हरिजन लोग सम्मानजनक जीवन जी सकें इसमें उनकी मदद करें। इसी तरह हिंदू समाज में बदलाव आएगा और इसे नया जीवन मिलेगा। इसके लिए उन्होंने महिलाओं से वह सब कुछ करने के लिए कहा जो उनकी सामर्थ्य में है। महिलाओं से उन्होंने अधिक से अधिक कुर्बानी देने को कहा। आगे उन्होंने कहा कि इसके लिए महिलाएं अपने भोग–विलास की सुविधाओं और आभूषण के उपयोग को त्याग दें। ऐसा करते हुए वे अछूतों के साथ सदियों से सवर्णों द्वारा किए जा रहे शोषण और अन्याय का प्रायश्चित करेंगी। गांधी के आंदोलन में महिलाओं के सहयोग का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण बाम्बे की घटनाओं में देखा जा सकता है जहां महिलाओं का एक बड़ा और सक्रिय संगठन गांधी सेना

के नाम से मौजूद था जो कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में जिसमें हरिजन उत्थान भी था, सहयोग करता था। बेशक, राष्ट्रीय स्तर पर बड़ी संख्या में जैसा कि गांधी ने उम्मीद की थी, महिलाओं को इकट्ठा करने में वे सफल नहीं हो सके। ऐसा क्यों नहीं हो सका इसके पीछे के कारणों में कुछ तो लोगों की बढ़ी हुई कठिनाइयां थीं जो वर्षों की आर्थिक मंदी के चलते पैदा हुई थीं, पर शायद इससे भी अधिक गांधी के आंदोलन का समाजिक ऐतिहासिक और राजनैतिक रूप से विफल होना था जो यहां हमारी चर्चा का केन्द्रीय विषय है।

छुआछूत के प्रति कांग्रेस के दृष्टिकोण का आरंभिक इतिहास

छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष में गांधी की भूमिका को ऐतिहासिक संदर्भ में समझने के लिए जरूरी है कि छुआछूत के प्रति कांग्रेस के आरंभिक दृष्टिकोण को समझा जाए। इससे संघर्ष के इतिहास का आधार मिलेगा। 1885 से 1917 तक कांग्रेस ने सामाजिक मुद्दों को जान बूझकर किनारे रखा। यहां तक कि सुधारवादी विचार वाले अधिकांश नेता भी दादा भाई नौरोजी के इस विचार से कि ''कांग्रेस राजनैतिक आकांक्षाओं को प्रदर्शित करने वाली राजनैतिक संस्था है न कि सामाजिक सुधारों पर कोई बहस करने वाली संस्था'' सहमत थे। यद्यपि इसके विपरीत पूर्व के कुछ दशकों में बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना यहां तक कि कई स्तरों पर कांग्रेस के बदलते हुए मुद्दे को देखने से पता चलता है कि दोनों ही, अर्थात् सामाजिक सुधार और राजनैतिक आकांक्षा की धाराएं साथ–साथ चलीं।

पूना में कांग्रेस के ग्यारहवें अधिवेशन के बाद सामाजिक सुधारवादियों ने कांग्रेस के पंडाल में कुछ विचार विमर्श किया। तिलक और कुछ अन्य उग्र पंथी नेताओं ने कांग्रेस के पंडाल के इस तरह के उपयोग पर आपत्ति की। उस समय इस बात को लेकर कि 'कानूनी रूप से स्त्री की कोई उम्र निर्धारित नहीं होने पर क्या कोई सेकुलर कानून किसी हिंदू व्यक्ति को अपनी कम उम्र की पत्नी के साथ सहवास करने से रोकता है? बहस चली। यह 1895 की बात है। लेकिन 1917 तक स्थितियां बदल गई थीं। अब उग्र पंथियों और नरमपंथियों के बीच समझौता हो गया था और साँझा मंच पर आने के लिए कांग्रेस और मुसलिम लीग में सहमति भी बन गयी थी। उस समय आम जनता के राजनीतिकरण और उसके सहयोग की आवश्यकता थी। अछूत, जो उस समय की कुल जनसंख्या का सातवां हिस्सा थे शोषित समाज के रूप में पहचाने गए। मांटेस्क्यु और चेम्स फोर्ड के आगमन के समय एक तरफ कांग्रेस उन दोनों से मिल रही थी तो दूसरी तरफ प्रताड़ित वर्ग के प्रतिनिधि भी उनसे मिल रहे थे। कुछ उत्पीड़ित वर्ग के प्रवक्ता मद्रास और बम्बई में ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन के प्रतिनिधि थे। इनके अलावा अन्य प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के सुधार वादी नेता थे। जस्टिस सर नारायण गणेश चंद्रावरकर की अध्यक्षता में वर्ष 1917 में बम्बई में प्रताड़ित वर्ग के नेताओं की एक सभा हुई, जिसमें लगभग 3500 लोगों ने भाग लिया। जस्टिस चंद्रावरकर वर्ष 1900 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वे 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' के मंत्री भी रहे और बाद में 'डिप्रेस्ड क्लासेज मिशन सोसाइटी' के अध्यक्ष भी हुए।

'प्रताड़ित वर्ग' के लोग अपनी जनसंख्या के अनुपात में अपने प्रतिनिधि चुन सकें, उन्हें अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा का अवसर मिल सके, आदि उनके कई अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए कांग्रेस द्वारा एक संकल्प पारित किया गया। साथ में यह भी संकल्प पारित किया गया कि उच्च जाति के हिंदू लोग 'प्रताड़ित वर्ग' को नीच बताने के अपने ऊपर लगे कलंक को मिटाएंगे। विशेष रूप से 1917 में स्वशासन के मुद्दे पर कांग्रेस और लीग के बीच हुए समझौते का समर्थन करते हुए कांफ्रेंस ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से उसके आने वाले अधिवेशन में निम्न विषयों पर संकल्प पारित करने को कहा

> अछूतों पर धर्म और रीतिरिवाज के नाम पर जो अयोग्यताएं लादी गई हैं उसे हटाना आवश्यक ही नहीं, बल्कि न्याय पूर्ण और धार्मिक भी है। ये अयोग्यताएं कष्टप्रद होने के साथ–साथ अपने स्वभाव में दमनकारी भी हैं जिसके कारण अछूत वर्ग के लोग न तो सार्वजनिक स्कूलों और स्वास्थ्य केंद्रों, और न ही न्यायलयों और सार्वजनिक कार्यालयों में प्रवेश कर सकते हैं। वे सार्वजनिक कुओं आदि का भी उपयोग नहीं कर सकते हैं। हालांकि ये सभी अयोग्यताएं अपनी उत्पत्ति में सामाजिक हैं, पर कानून और व्यवहार में राजनैतिक अयोग्यता के समान हैं और इस तरह वैधानिक रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मिशन और प्रचार के विषय के रूप में आती हैं। अर्थात् इन अयोग्यताओं को खत्म करना कांग्रेस के एजंडे में है।

बापू जी नामदेव वागदे की अध्यक्षता में एक सप्ताह बाद अछूतों की एक दूसरी सभा संपन्न हुई जिसमें करीब 2000 लोगों ने भाग लिया। बापू जी नामदेव वागदे एक गैर–ब्राह्मण पार्टी के नेता थे जो कांग्रेस और लीग के साँझा मंच पर आने के विचार के समर्थक नहीं थे। लेकिन उन्होंने अछूतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व देने का समर्थन किया। वर्ष 1918 में एक दूसरी सभा में जिसकी व्यवस्था बड़ौदा के गायकवाड़ ने की थी, तिलक ने भाग लिया और कहा कि "अगर ईश्वर छुआछूत को मानता है तो मैं उसे ईश्वर के रूप में मानने से इन्कार कर दूंगा।" इस तरह की कई सभाएं हुईं जिसमें कांग्रेस ने छुआछूत को समाप्त करने का आहवान किया। यह सब गांधी के छुआछूत विरोधी मुहिम के आरंभ से पहले की घटनाएं हैं। पर गांधी के आने के बाद यह मुद्दा बड़े महत्त्व का हो गया।

कुछ पश्चिमी विचारकों का, विशेष रूप से इलिनार जीलियट का इस संबंध में कहना है कि छुआछूत को लेकर बड़े पैमाने पर यह नई चिंता सामाजिक कम धार्मिक ज्यादा थी। पर लेखक की राय में जिलियट की यह आलोचना सतही है। असल में गांधी यह मानते थे कि छुआछूत के धार्मिक पहलू ने समस्या को और जटिल तथा हठी बना दिया है। इसलिए इसके संबंध में अलग दृष्टिकोण अपनाना होगा। वैसे भी यह समस्या धर्म से अलग मात्र रूढ़ियों द्वारा पैदा हुई सामाजिक समस्या नहीं है।

असहयोग आंदोलन से संबंधित कांग्रेस का 1920 के ऐतिहासिक संकल्प का, जिसे गांधी ने तैयार किया था, अंतिम अनुच्छेद छुआछूत की समाप्ति से संबंधित है, जो भारतीय

स्वाधीनता आंदोलन का अभिन्न हिस्सा बना और आम जनता से जुड़ गया। यह संकल्प इस प्रकार है

> असहयोग आंदोलन उसी समय सफल हो सकता है जब जनता का स्वयं आपस में सहयोग हो। कांग्रेस हिंदू–मुसलिम एकता को बढ़ावा देने के लिए जनता से सहयोग की मांग करती है। कांग्रेस के हिंदू प्रतिनिधि यह आहवान करते हैं कि प्रतिष्ठित हिंदू, ब्राह्मण और गैर–ब्राह्मण के बीच के विवाद को, चाहे वे कहीं भी हों, समाप्त करने में सहयोग करें। हिंदू धर्म को छुआछूत के कलंक से मुक्त करने के लिए विशेष प्रयास करें। धर्मगुरुओं को पूरी तरह सम्मान देते हुए उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित करें कि वे अछूत वर्ग के उन लोगों के साथ जो हिंदू धर्म से संबंधित पूजा–पाठ में भाग लेना चाहते हैं, सहयोग करें।

इस संदर्भ में जीलियट की टिप्पणी है ''अब छुआछूत की समस्या अछूतों के दुःखों की अपेक्षा 'हिंदू धर्म पर एक कलंक' के रूप में थी।'' अगर जीलियट की आलोचना यही है तो यह पूरी तरह विषय से अलग है। इसके विपरीत संकल्प की प्रस्तावना में जो बात कही गई है वह लोगों को बड़ी गहराई से प्रभावित करने वाली है। संकल्प पारित होने के साथ ही गांधी को शारदामठ के शंकराचार्य का इस आशय का पत्र मिला कि अछूतों का उद्धार पूरी तरह शास्त्रसम्मत है।'

छुआछूत की आलोचना करते हुए कांग्रेस के संकल्पों में कुछ नए खंड और जोड़े गए। इस तरह के कुछ और निर्णय आंदोलन की प्रक्रिया में ही ले लिए जाते रहे हैं। जैसे, भंगियों द्वारा किए जा रहे सफाई के काम को सम्मानजनक बनाना, आदि। बाद में गांधी ने इस बात का आग्रह किया कि कांग्रेस अधिवेशन के दौरान भंगियों द्वारा किए जाने वाले सफाई का काम केवल उन्हीं के द्वारा नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि कांग्रेस के स्वयं सेवकों द्वारा भी किया जाना चाहिए जिसमें ब्राह्मण भी सम्मिलित थे। यह प्रक्रिया 1938 के हरिपुरा अधिवेशन तक चलती रही। असल में गांधी का यह निर्णय उनकी काम करने के तरीके को प्रकट करता है जो स्वाधीनता आंदोलन तक चलता रहा। वर्ष 1922 में उन्होंने कहा कि भारत का राष्ट्रपति एक भंगी लड़की बने जिसके अधीन पंडित जवाहर लाल नेहरू काम करें ऐसा उनका सपना है। (यंग इण्डिया 5 जनवरी 1922)।

राष्ट्रीय स्वैच्छिक संगठन ने अपने हिंदू प्रतिनिधियों के लिए निम्न नए संकल्पों को सम्मिलित किया :

> ''हिंदू के रूप में मुझे न्याय और छुआछूत की समाप्ति में विश्वास है और मैं सभी संभव अवसरों पर व्यक्तिगत संपर्क बनाते हुए शोषित वर्ग के लोगों को अपनी सेवाएं देने का प्रयास करूंगा।''

इस तरह का संकल्प सदस्यता ग्रहण करने की शर्त के रूप में नहीं था। लेकिन कांग्रेस का विश्वास था कि ''हर व्यक्ति जो 18 या इससे ऊपर की उम्र का है, तुरंत स्वयं को स्वैच्छिक संगठन में शामिल करेगा'' और दूसरा उसके पालन का प्रश्न था। राष्ट्रवादी

स्कूलों में अछूतों के बच्चों के प्रवेश का, जिसे कांग्रेस ने उस समय तैयार करवाया था जब सरकारी स्कूलों में अछूतों के बच्चों का प्रवेश मुश्किल हो गया था। वैसे भी, व्यवहार में अछूतों के बच्चों का स्कूलों में प्रवेश आसान नहीं था। कई बड़े नेताओं में एक सरदार पटेल भी थे जो इस प्रश्न पर संजीदा थे। लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने यह महसूस किया कि अछूतों के लिए अलग से स्कूल आने वाले कुछ समय तक के लिए बनाए रखना पड़ सकता है। यह वर्ष 1921 और 1922 की बात है। इसके बाद उपर्युक्त दृष्टिकोण में एक बदलाव की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। वर्ष 1924 में कांग्रेस अपने इस दृष्टिकाण से पीछे हटती हुई दिखती है। उसने राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं पर अपने एक संकल्प में, पहले स्वीकार किए गए अपने प्रस्ताव को जिसमें अछूतों की शिक्षा के संबंधित एक खंड था, इस संकल्प में अत्यंत ही कमजोर कर दिया। अब न तो ''यह हिंदू–मुसलिम एकता, न तो अछूतों में शिक्षा और न ही छुआछूत को समाप्त करने वाली भावना को प्रोत्साहित करने वाला रह गया। इस संघर्ष में अधिकांश लोगों का कहना था कि अछूत के लिए राष्ट्रीय स्कूलों का निर्माण दूसरे लोगों को स्वीकार्य नहीं था। (यह उस समय की सामाजिक सच्चाई थी जिसे नकारा नहीं जा सकता।)

N|vkNr d fo#) xkèkh dh vkjfHkd fLFkfr

गांधी ने अपने एक लेख 'द कांग्रेस एण्ड आफ्टर' में, जो 1921 में अहमदाबाद में संपन्न कांगेस के अधिवेशन के तुरंत बाद 5 जनवरी 1922 को 'यंग इण्डिया' में छपा था, लिखा

> सामान्यतः छुआछूत के प्रश्न को हल करने के लिए हमें बड़े प्रयास करने चाहिए। जब तक अछूत लोग हिंदू धर्म में सुधार के कार्य से संतुष्ट नहीं होते तब तक हम यह दावा नहीं कर सकते कि हम लोगों ने इस संदर्भ में कुछ काम किया है। यह मेरे लिए दुःख की बात है कि आंध्र प्रदेश जैसे जागरूक और विकसित राज्य में इस प्रश्न को लेकर लोगों में गलत समझ बनी हुई है। ऐसा मुझे देखने को मिला है। छुआछूत के खात्मे का प्रश्न हिंदू समाज में पांचवें वर्ण के खात्मे का प्रश्न है। इसलिए अछूत बच्चों के सार्वजनिक कुओं से पानी भरने और स्कूलों में प्रवेश का विरोध नहीं होना चाहिए। गैर ब्राह्मण के रूप में उसे हर अधिकार के प्रयोग की स्वतंत्रता होनी चाहिए। धर्म के नाम पर हम हिंदू लोगों ने अपने धर्म को बाहरी लोगों की निगाह में अंध श्रद्धा का सिद्धांत बना रखा है। हम लोगों ने धर्म को इतना नीचे गिरा रखा है कि वह मात्र खाने और पीने का प्रश्न बनकर रह गया है। ब्राह्मणवाद की अद्वितीय स्थिति उसके आत्म तिरस्कार और आंतरिक पवित्रता में है, और उसकी सहजता में है। और यह सब आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा आलोकित है। अगर खाने और छुआछूत के प्रश्न को आध्यात्मिकता से जोड़कर इसे अनावश्यक महत्त्व दिया जाएगा तो हिंदुओं का अंत हो जाएगा। आज हम अपने लोगों के बीच ही प्रलोभन और परीक्षण के दौर से गुजर रहे हैं। अधिकांशः लोग घृणित और भयावह विचारों से ग्रस्त हैं। अपने दंभ के चलते हमें यह नहीं कहना चाहिए कि उन लोगों से, जिन्हें हम अज्ञानतावश नीच समझते हैं, संपर्क का हम लोगों पर बुरा असर पड़ता है। ईश्वर के समक्ष इस बात के लिए हमारा फैसला नहीं किया जाएगा कि हमने क्या खाया है, हमारी सेवा किनके द्वारा की गई है और किस तरह की गई है बल्कि हम वहां इस बात के लिए जाने जाएंगे कि विपत्ति में पड़े एक मनुष्य को हमने मदद की या नहीं। खराब और तामसिक भोजन से हमें उसी तरह दूर रहना चाहिए जैसे बुरे लोगों से पर इन बातों को हमें उतना ही महत्त्व देना चाहिए जितनी जरूरत है। कुछ निश्चित भोजन के परहेज के नाम पर हमें अपनी धूर्तता, बनावटीपन और दुर्गुणों को छिपाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। हमें उस दलित और शोषित व्यक्ति की सेवा करने से उस समय तक इनकार नहीं करना चाहिए जब तक कि उसके संपर्क से अपने आध्यात्मिक विकास का मार्ग अवरूद्ध न होता हो।''

(सी. डब्ल्यू. एम. जी. XXII पी. 136)

o.kkJe èkel vkj vuqokf'kd iS'k ij xkèkh dh fLFkfr

अगर कोई व्यक्ति पेशे पर आधारित एक ऐसे उच्च श्रेणीबद्ध समाज में जो व्यक्तिगत संपत्ति और प्रतिस्पर्धा पर आधारित हो, अपने व्यवसाय को एक कर्त्तव्य के रूप में न लेकर, अधिक धन कमाने के साधन के रूप में लेता है तो गांधी इसके विरोधी थे। वर्णाश्रम धर्म की निम्न परिभाषा से उनकी स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है

> वर्णाश्रम की मेरी अवधारणा का आज की छुआछूत और जाति व्यवस्था की अवधारणा से कोई समानता नहीं। वर्ण का श्रेष्ठता और निम्नता से कोई संबंध नहीं...

(सी. डब्ल्यु. एम. जी. XXXV, 81)

iu%

मेरी राय में ऐसी कोई चीज नहीं जो श्रेष्ठता को महत्त्व देती है....मैं स्पष्ट रूप से यह विश्वास करता हूँ कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं। चाहे वे अमेरिका में पैदा हुए हो या इंग्लैण्ड में, भारत में हुए हो या कहीं और या किसी भी परिस्थिति में पैदा हुए हैं सब में एक ही आत्मा है। ऐसा इसीलिए कि मैं यह विश्वास करता हूँ कि सभी मनुष्य समान है और यह कि श्रेष्ठता के सिद्धांत के विरुद्ध मेरा संघर्ष है जिसका हमारे ज्यादातर शासक दंभ भरते हैं। श्रेष्ठता के इस सिद्धांत के विरुद्ध मैं दक्षिण अफ्रीका में पग–पग पर लड़ा हूँ तो इस विश्वास के चलते ही। मुझे अपने आपको भंगी, बुनकर, किसान और मजदूर कहने में खुशी होती है। मैं वहां ब्राह्मण ाों के खिलाफ स्वयं लड़ा हूँ जहां उन्होंने जन्म या ज्ञान के आधार पर श्रेष्ठता का दावा किया। अपने किसी साथी की तुलना में खुद को श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति को मैं अमानवीय मानता हूँ। इसलिए मैं हर उस गैर–ब्राह्मण के साथ हूँ जो श्रेष्ठता के राक्षस के विरुद्ध संघर्ष करता है। तब चाहे वह रहमान के द्वारा या अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा श्रेष्ठता का दावा किया गया हो। ज्यों ही कोई व्यक्ति श्रेष्ठ होने का दावा करता है वह त्यों ही अपने मनुष्य होने के दावे को खो बैठता है। ऐसा मेरा विचार है।

(यंग इण्डिया 29 सितंबर 1927)

NvkNr vkj lkekftd lèkkj & 1929

1929 में जब गांधी जी से 'नेशनल सोशल कांफ्रेंस' की अध्यक्षता करने को कहा गया तो उन्होंने मना कर दिया। इसलिए कि सामाजिक सुधार का उनका जो तरीका था वह अन्य पारंपरिक समाज सुधारकों से भिन्न था। समाज सुधारक के रूप में गांधी जी इस बात पर दृढ़ थे कि राजनैतिक विकास की पूर्व शर्त सामाजिक विकास है, विशेष रूप से अछूतों के संदर्भ में। ऐसा न होने पर उन्होंने समाज सुधार के कार्यक्रम को स्थगित करते हुए राष्ट्रीय संगठनों के स्थापित तरीकों से अपने आपको अलग रखा। इतना ही नहीं उन्होंने हर उस आंदोलन से अपने आपको अलग रखा जिसका कि वे खुद नेतृत्व न करते हों। गांधी के लिए यह वैसे ही था जैसे कि वे राजनैतिक कार्यक्रमों को उनकी तकनीक न पसंद आने पर टाल देते थे। भारतीय समाज में बदलाव के प्रोत्साहन का उनका तरीका कई स्तरों पर उन पारंपरिक समाज सुधारकों के तरीकों से भिन्न था। गांधी मूलतः इसे राष्ट्रीय पुनर्निमाण मानते थे। इसके लिए उन्होंने प्रचार या शिक्षा का सहारा वैसे ही लिया जैसा कि वे लिया करते थे। पर भारतीयों के लिए उनका संदेश था कि वे पाप का त्याग कर नैतिकता और धर्म से प्रेरित हों (उदाहरण के लिए वे बाल विवाह और उसके लिए सर्वसम्मति से प्रस्तावित एक उम्र के निर्धारण में प्रचलित विरोध के विरुद्ध खड़े हुए थे) जहां अन्य सुधारक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तर्कों और अनुभव से प्राप्त साक्ष्यों पर निर्भर करते थे वहीं गांधी अपने व्यक्तिगत कार्यों और आचरणों से प्राप्त करते थे जिसका लोगों पर प्रभाव होता था। अंत में उन्होंने पहले के सभी आंदोलनों से, चाहे वे सामाजिक सुधार के रहे हों या राजनैतिक सुधार के, सत्याग्रह की मुहिम चलाने के लिए अपने आपको अलग कर लिया। विशेष रूप से अछूतों की तरफ से।

गांधी के लिए दलितों और शोषितों को तैयार करना अपने–आप में एक उद्देश्य था। गांधी ने समाज सुधार का काम उच्च वर्ग के लोगों की बजाए निम्न वर्ग के लोगों पर डाला जो उसके लाभार्थी थे। इसके लिए गांधी ने अछूत और अन्य शोषित जातियों के लिए एक मात्र संभव रास्ता तैयार किया। अपने सत्याग्रह के दौरान उन नियमों और कानूनों के खिलाफ जो साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा लादे गए थे या उन प्रतिगामी रीति रिवाजों और परंपराओं के खिलाफ जो समाज द्वारा बनाए गए थे, जो सत्य से परे चले गए थे। सार्वजनिक प्रदर्शन कर व्यवस्था की अनैतिकता को उन्होंने दिखाया। पहले के ज्यादातर समाज सुधारक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न तो इतनी शीघ्रता से और न ही नियमों और परंपराओं को चुनौती देते हुए आगे बढ़ने के लिए तैयार थे। वे केवल समाज सुधार के लिए मौखिक बहस करने के अभ्यस्त थे। वे ऐसा मानते थे कि समाज के कानूनी माहौल और रीतिरिवाजों में धीरे–धीरे परिवर्तन आएगा। इससे भी ज्यादा गांधी के पहले

के सुधारक सरकार को अपने विरोधी के रूप में न देख सहयोगी के रूप में देखते थे।

छुआछूत की बुराई के विरुद्ध गांधी का उद्गार उनकी उत्कृष्ट मानना पर आधारित था। यह आलोचनात्मक देश भक्ति पर आधारित था जो साथ ही साथ एक सच्ची अंतर्राष्ट्रीय चेतना थी। 1930 में गांधी ने कहा

> ".....छुआछूत के उन्मूलन से मनुष्य और मनुष्य के बीच उपस्थित बाधाएं और उनके बीच उपस्थित हर तरह की असमानताएं समाप्त होती हैं। इस तरह की बाधाएं और असमानताएं विश्व में हर जगह मिलती हैं। लेकिन यहां हम मुख्यतः छुआछूत पर ही केंद्रित हैं जिसे भारत में स्वीकृति मिली हुई है और जिसने लाखों और करोड़ों मनुष्यों को गुलामी की स्थिति में रखा है।"

(9 सितंबर 1930, सी. डब्ल्यु. एम. जी. – XLIV, पी–134–35)

8 अक्टूबर 1931 के दूसरे गोलमेज सम्मेलन के आखिरी अधिवेशन में अछूतों से संबंधित कांग्रेस द्वारा स्वीकार किए गए विशेष प्रस्ताव का विस्तृत विवरण गांधी ने प्रस्तुत किया। ये प्रस्ताव कांग्रेस ने 'ऑल पार्टी कन्वेशन–1928' और उसके तुरंत बाद 1931 के करांची अधिवेशन में स्वीकार किए थे। इन्हें प्रस्तुत करने के बाद गांधी ने कहा

> "ऐसा लगता है कि मुझे विधायिकाओं में अछूतों के प्रतिनिधि के विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसा सोचना सच का उपहास करना है। जैसा कि मैंने कहा है और जिसे मैं फिर से दुहराना चाहूंगा कि मैं उनके विशेष प्रतिनिधित्व का विरोधी हूं। यह उनके किसी लाभ का नहीं है, बल्कि इससे उनकी हानि हो सकती है। लेकिन कांग्रेस मताधिकार के लिए कृतसंकल्प है। इससे उनमें से लाखों–लाख लोग मतदाता की भूमिका में आ जाएंगे। ऐसा सोचना गलत है कि आज तेजी से समाप्त हो रही छुआछूत की स्थिति में दूसरे लोग उनके मतदाता होने का बहिष्कार करेंगे। लेकिन इन लोगों के विधायिकाओं में प्रतिनिधित्व की अपेक्षा उन अभियोगों से इनकी सुरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो समाज और धर्म के नाम पर इन लोगों पर लगाए गए हैं। सामाजिक रीतियां कानून से ज्यादा शक्तिशाली हैं उन्होंने उनको इतना नीचे गिरा दिया है कि उसे लेकर हर हिंदू शर्मिंदगी महसूस करता है। सवर्णों द्वारा अछूतों के प्रति किए जा रहे अनुचित व्यवहार के खिलाफ मैं कड़े से कड़े विशेष आपराधिक दण्ड विधान की वकालत करता हूँ। भगवान का शुक्र है कि हिंदुओं की चेतना जाग चुकी है और छुआछूत जल्दी ही अपने निकृष्ट इतिहास की चीज बन जाएगी।

(8 अक्टूबर को गोलमेज सम्मेलन स्थगित हो गया क्योंकि 7 अक्टूबर को पार्लियामेंट नए चुनाव के लिए विघटित कर दी गई) सी.डब्ल्यु. एम. जी–XLVII, पी. 199

हालांकि, सनातनी लोग कहते थे कि वे अछूतों के प्रति कोई घृणा नहीं रखते। यहां तक कि वे यह दावा भी करते थे कि वे ईश्वर की संतान हैं और उन्हें इस देश की नागरिकता का अधिकार है लेकिन साथ ही साथ वे यह भी कहते थे कि धर्म द्वारा की गई अलगाव की बात का उच्च नैतिक आधार है। गांधी ने सोचने की इस प्रवृत्ति को चुनौती

देते हुए कहा कि :

1. क्या आपको पता है कि कौन अछूत है, और क्यों?
2. क्या आपको पता है कि क्यों यह अमानवीय समाज व्यवस्था इन्हें भूमिहीन बनाए रखती है? अगर सौभाग्य से इनके पास भूमि हो भी जाती है तो वह उसका उपयोग उसी तरह नहीं कर सकते जैसा कि आप कर सकते हैं।
3. सार्वजनिक उपयोग की कई चीजों का ये उपयोग नहीं कर सकते जैसा कि आप करते हैं, और आपने अलग से उसके लिए कोई व्यवस्था भी नहीं की है। इस तरह वह भूख और प्यास से मर जाएगा, पर आप उसे पानी पिलाने में मदद नहीं करेंगे।
4. कैरियर बनाने के जो अवसर आपके पास हैं, उसके पास नहीं है।
5. यहां तक कि आध्यात्मिक और स्वास्थ्य सेवाएं उसके लिए नहीं हैं।

अगर यह सब प्रेम के रूप हैं तो क्या आप मेरे साथ नहीं सोचेंगे कि ऐसी स्थिति में प्रेम की अपेक्षा घृणा ही बेहतर है? मैं समझता हूँ उक्त फल से कोई दूसरी बुरी चीज नहीं हो सकती। मैं आपको बताऊं इससे बुरी बात पूरी दुनिया में कोई नहीं है। और इससे भी बुरी चीज यह है कि इस पर धर्म की मुहर लगी हुई है।

(द हिंदू, 5 जनवरी, 1933)

(सी. डब्ल्यु, एम. जी–सप्लीमेंट–II, 491)

23 अप्रैल 1933 को गांधी ने एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज लिखा, जिसमें उन्होंने इस बात की चर्चा की है कि अछूतों से संबंधित सनातनियों की मांग कितनी दुष्टतापूर्ण थी।

आगे उन्होंने कहा कि

"यह सबसे अच्छा होगा कि हरिजन लोग सवर्ण हिंदुओं से संघर्ष करें, बजाय इसके कि वे उनके सौहार्द और जूठन पर जिएं या पूरी तरह उन पर निर्भर रहें या हमेशा के लिए गुलाम बने रहें। ऐसी स्थिति में तब न तो डा. आंबेडकर को और न ही राव बहादुर श्री निवास को, संघर्ष करने के लिए उन्हें तैयार करने में किसी की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। छुआछूत कोई दैवीय नहीं है। यह मानव द्वारा निर्मित है। ईश्वर अच्छाई के साथ–साथ बुराई को भी रखता है, यह एक रहस्य है और उसे हल करने की कोई आवश्यकता नहीं पर बुराई की उपेक्षा करने की हिम्मत भी नहीं करनी चाहिए। वे लोग जो ईश्वर में स्वाभाविक रूप से विश्वास करते हैं वे यह भी मानते हैं कि वे अपने भाग्य विधाता खुद हैं। यहां तक कि हमारे दुःख उस समय खुशी में बदल जाते हैं जब हम अपने आपको पूरी तरह ईश्वर को समर्पित कर देते हैं।"

(गांधी ने इसे 6 नवंबर 1934 को एक पत्र में लिखा था)

(सी. डब्ल्यु, एम. जी. सप्लीमेंट–II, 491)

NvkNr] o.kZ vkSj tkfr

गांधी ने 1932 में कहा

"उन्होंने कभी नहीं कहा कि वर्णाश्रम किसी भी रूप में बुरा है। लेकिन उन्होंने यह जरूर कहा कि जाति एक बुराई है और इसे जाना चाहिए जब कि छुआछूत आत्मा को नाश करने वाला पाप है। मैंने वर्ण और जाति के अंतर को रेखांकित किया है। मैं इस सोच को लेकर पूरी तरह स्पष्ट हूँ कि अछूतों के साथ खाने–पीने का व्यवहार और अंतर्जातीय विवाह छुआछूत विरोधी आंदोलन के आवश्यक अंग नहीं है। इस संबंध में किसी तरह का दबाव नहीं बनाया जा सकता। और न ही, किसी व्यक्ति को अछूतों के साथ इस तरह के संबंध बनाने से रोका जाना चाहिए। इसी तरह अगर कोई अछूत किसी दूसरे समुदाय के सदस्य के साथ संबंध बनाता है तो उसे भी नहीं रोका जाना चाहिए। छुआछूत उन्मूलन का अंतरजातीय विवाह और खान पान से कुछ लेना–देना नहीं।"

(7 अक्टूबर 1932, सी.डब्ल्यु.एम.जीः LI, 202)

"मंदिर प्रवेश छुआछूत आंदोलन का मुख्य मुद्दा है। दूसरे समुदाय के लोगों को अछूतों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि वे आपस में स्वयं करते हैं.....रही बातें खाने की, तो यह अपने–अपने पसंद की बात है। यह छुआछूत के खात्मे के लिए जरूरी चीज नहीं है। मुझे विश्वास है कि हिंदू धर्म में किसी व्यक्ति को किसी व्यक्ति के साथ खाने के लिए कोई मनाही नहीं है। बशर्ते कि भोजन दोनों के लिए स्वीकार्य हो।"

(12 अक्टूबर 1932 सी. डब्ल्यु. एम. जी. L I, वी. 241)

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि आपके यहां हरिजनों के प्रवेश के लिए मंदिर के दरवाजे खोल दिए गए। छुआछूत उन्मूलन के लिए साथ–साथ खाना–खाना और अंतरजातीय विवाह करना अनिवार्य नहीं है। लेकिन यह हर किसी का अधिकार है कि वह अछूतों के साथ खाना खाए और वैवाहिक संबंध बनाए। इसी तरह हरिजन लोग भी अन्य लोगों की तरह यह अधिकार रखते हैं। साथ–साथ खाने का यह मतलब नहीं कि एक ही प्लेट में खाया जाए। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं बनता कि किसी अन्य व्यक्ति की लार ";सपअंद्ध भोजन में मिश्रित हो।

(14 अक्टूबर 1932 को लिखे एक पत्र में सी. डब्ल्यु, एम. जी. LI, 237.)

गांधी किस तरह जाति व्यवस्था और छुआछूत में भेद करते थे उनके एक पत्र से जाना जा सकता है जिसे उन्होंने एक अमेरिकी को उसके पत्र के उत्तर में लिखा था :

> "जाति व्यवस्था आधुनिक विश्व के लिए कोई बड़ा मुद्दा नहीं बनी है। आप (अमेरिकन पत्र लेखक) यहां की व्यवस्था से अनभिज्ञ जान पड़ते हैं। मैंने इस बुराई के खिलाफ जो व्यवस्था में अंदर तक फैल गई है, आवाज उठाई है। लेकिन यहां के लोग इससे अपरिचित हैं। जाति व्यवस्था उसी तरह समाप्त की जानी चाहिए जैसे छुआछूत। पर छुआछूत बड़ी बुराई है और विश्व इस बात को जानता है कि इसे समाप्त करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास किया जा रहा है। उपवास (गांधी का) जिसे आपने महत्त्वहीन माना है आंदोलन को बढ़ाने के लिए किया गया था। मैं आपकी इस बात से कतई परेशान नहीं हूं कि आपने मेरे पहनावे और उपवास के तरीके को अमेरिका में चल रहे सतही ढंग के प्रचार के तरीके से जोड़ा है। किसी व्यक्ति का महत्त्व उसके सिद्धांत में नहीं, बल्कि उसके व्यवहार में छिपा रहता है। लेकिन ईमानदारी से कोई भी व्यक्ति यह स्वीकर कर सकता है कि भारत में निम्न वर्ग के लोगों को उनकी दयनीय स्थिति से कोई दूसरा नहीं उठा सकता जब तक कि खुद उनके अंदर से इस प्रयास का आरंभ नहीं होता।"

(सी. डब्ल्यु. एम. जी. LV, आइटम 335, 285,87)

गांधी ने आरंभ से ही डा. आंबेडकर को अपनी मुहिम का एक हिस्सा बनाना चाहा। इसकी उन्होंने पूरी कोशिश की। वे 'ऐंटी अनटचएबिलिटी हरिजन वेलफेयर कमेटी' के सदस्य थे जिसका गठन तुरंत पूना पैक्ट के बाद हुआ था। गांधी ने अपने हरिजन पत्र के पहले अंक के लिए डा. आंबेडकर से एक लेख मांगा था जिसे उन्होंने दिया भी। (फरवरी, 1933) दो कारणों से गांधी का आंबेडकर को साथ लाने का प्रयास असफल रहा। पहला कारण तो विचारों को लेकर मतभेद का था। आंबेडकर का कहना था कि जाति व्यवस्था के अन्य कई पहलुओं के साथ–साथ अंतरजातीय विवाह और अंतरजातीय भोज आदि कार्यक्रम को भी आंदोलन में शामिल किया जाना चाहिए था। उनकी स्पष्ट सोच थी कि चूंकि छुआछूत जाति व्यवस्था का ही फल है, इसलिए जब छुआछूत को खत्म करने की बात की जाए तो सबसे पहले जातिव्यवस्था को ही खत्म किया जाना चाहिए। हमारे पास एक संक्षिप्त दस्तावेज है जो इस विषय पर गांधी के तात्कालिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। 10 अक्टूबर 1932 को अपने एक पत्र में जिसे उन्होंने अपने एक बंगाली शिष्य डा. सुरेश चंद्र बनर्जी को लिखा था :

> "छुआछूत और जाति से संबंधित आपके विचारों को मैं जानता हूँ। मैं आपकी इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि जाति समाप्त होनी चाहिए। लेकिन हम लोगों के समय तक यह समाप्त होगी, मैं नहीं जानता। हमें दोनों चीजों को एक साथ नहीं मिलाना चाहिए। ऐसा करने से हमारे उद्देश्यों को क्षति पहुँचेगी। छुआछूत आत्मा का नाश करने वाला एक पाप है। और जाति एक सामाजिक बुराई। कोई बात नहीं, आप पूरे उत्साह के साथ जाति के विरुद्ध संघर्ष करें, पर मुझे इसमें आप अपना समर्थक ही मानें....

इसमें गांधी ने जो कुछ भी कहा है वह यथार्थपरक राजनीति को ध्यान में रखकर कहा है जो व्यावहारिक सिद्धांतों पर आधारित है अर्थात एक बार में केवल एक ही शत्रु को लो, पर पहले उसे, जो सबसे बुरा हो। गांधी हमेशा इस बात में विश्वास करते थे कि 'एक ही कदम मेरे लिए अधिक है, यह पंक्ति उनकी एक प्रिय कविता ''लीड काइंडली लाइट'' से ली गई है जिसे कार्डिनल न्युमैन ने लिखा था। यह पंक्ति गोखले को भी बहुत प्रिय थी जिसे गांधी अपना गुरु मानते थे। आज के वामपंथी और रेडिकल सर्किल में यह कविता माओत्से तुंग के लिए क्रांतिकारी संघर्ष के कानून के एक तरीके के रूप में जानी जाती है जिन्हें क्रान्तिकारी लोग बड़े सम्मान से देखते हैं। लेकिन गांधी के विषय में यह एक सामान्य सी अधिकारिक दलित लाइन जान पड़ती है जिसे इन लोगों द्वारा बार–बार दुहराया जाता है कि ''दलितों को कमजोर रखना गांधी की चाल थी'' और यह कि ''गांधी जाति को बनाए रखना चाहते थे''। निश्चित रूप से यह एक दुष्प्रचार है जो अज्ञान पर आधारित है। दलितों का गांधी के प्रति विचार कि उन्होंने दलितों को हरिजन नाम और हिंदू समाज में सुधार के लिए शांतिपूर्ण ढंग से आंदोलन चलाने का उपदेश देकर इस जाति के लोगों को कुछ भद्र हिंदुओं के नैतिक छत्रछाया में रहने के लिए प्रेरित किया, दलितों को हिंदुओं के संरक्षण में रखने की कोशिश की जाहिर करता है कि तथ्यात्मक रूप से ये लोग न तो गांधी को जानते हैं और न ही उन्होंने क्या कहा है, उसे। गांधी ने कहा था कि अछूत लोगों ने पूरे समाज का बोझ उठाते हुए देश की सेवा की है। इसलिए अकेले वे ही हरिजन कहे जाने के अधिकारी हैं, अर्थात ईश्वर की संतान। और वे उच्च जाति के लोग जिन्होंने हमेशा बिना सेवा के इन पर राज किया है, दुर्जन हैं। अर्थात बुराई की संतान। यही असली गांधी थे।

गांधी द्वारा हरिजन शब्द के प्रयोग का इतिहास भी बड़ा रोचक है। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में जाने से एक महीने पहले गांधी को अहमदाबाद से सर चिनुभाई का एक निजी मंदिर के उद्घाटन का निमंत्रण मिला, जिसमें अछूतों को प्रवेश देने का कार्यक्रम था। हालांकि गांधी के आने पर चिनुभाई ने इस बात का खेद जताया कि गांधी जी को अपने व्यस्ततम कार्यक्रमों में से समय निकालकर आना पड़ा लेकिन गांधी ने इस अवसर के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा कि

> "यह निजी मंदिर है। अगर इस तरह के मंदिर के दरवाजे अछूतों के लिए खोले जा सकते हैं तो सार्वजनिक मंदिर के दरवाजे क्यों नहीं? और उनके दरवाजे कब तक बंद रह सकते हैं? दूसरे ही दिन एक मित्र ने मुझे सुझाव दिया कि अब तक अछूतों के लिए जो शब्द 'अंत्यज' प्रयोग किया जा रहा था उसके स्थान पर उन लोगों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया जाए। यह शब्द एक बड़े संत नरसिंह मेहता द्व ारा जो ब्राह्मण समाज से आते थे और जिन्होंने अपने पूरे समाज का विरोध करते हुए अछूतों को अपनाया था, प्रयोग में लाया गया था। मुझे इस नाम को लेते हुए बेहद खुशी है, क्योंकि यह एक बड़े संत द्वारा स्वीकृत है। लेकिन मेरे लिए इसका अर्थ और भी बड़ा है। मेरे लिए अछूत लोग, हम लोगों की तुलना में, निश्चित रूप

से हरिजन हैं, अर्थात ईश्वर की संतान हैं और हम लोग दुर्जन हैं, अर्थात बुराई की संतान है। अछूतों ने अपने हाथों को कड़ी मेहनत और खराब से खराब काम करते हुए गंदा किया ताकि हम लोग आराम से और साफ सुथरा रह सकें। और इसके बदले हम लोग उनका शोषण करने में खुशी महसूस करते हैं। उनकी दयनीय स्थिति के लिए पूरी तरह हम लोग जिम्मेदार हैं। हरिजन बनने के लिए हमारे पास अभी भी अवसर है, पर हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब इन लोगों के प्रति किए गए अपने पापों के लिए ईमानदारी से पश्चाताप करें।"

(यंग इण्डिया 6 अगस्त 1931 सी. डब्ल्यु. एम. जी. XLV-II 246.8)

2 अगस्त 1931 के ठीक उसी दिन के अपने नवजीवन के अंक में 'हरिजन' उपशीर्षक से एक नोट पहले ही लिख चुके थे जो इस प्रकार है।

"नवजीवन के गंभीर पाठकों से 'अत्यंज' शब्द का कोई स्थानापन्न शब्द ढूंढ़ने का मैंने आग्रह किया था। उपलब्ध तीन चार सुझावों में से मुझे एक नाम अच्छा लगा था। उन्होंने मुझे लिखा कि यह शब्द नया नहीं है। यह बड़ा सुंदर शब्द है जिसका प्रयोग पहले ही उनके द्वारा किया जा चुका है। अर्थात 'हरिजन'। हरिजन शब्द का एक अर्थ यह भी है कि जो लोग परित्यक्त कर दिए गए हैं वे लोग ईश्वर की संतान हैं। इस शब्द का तीसरा लाभ यह है कि संभवतः अछूत भाई इसे प्रेम से स्वीकार कर लेंगे। और इसे उन्हीं गुणों से भर देंगे जिसके लिए यह जाना जाता है। उदाहरण के लिए जिस तरह कालीपराज (Kaliparaj) रानी पराज (Rani Paraj) हो गया उसी तरह 'अंत्यज' भी अपने नाम और स्वभाव दोनों में हरिजन हो जाएगा।

(वही)

इस तरह 2 अगस्त 1931 को गांधी के राजनैतिक कोष में 'हरिजन' शब्द के प्रवेश की तारीख माना जा सकता है।

छुआछूत के विरुद्ध गांधी की मुहिम के सफल न हो पाने के पीछे एक दूसरा कारण भी है। कांग्रेस के बहुत से नेता गांधी और आंबेडकर के आपसी सहयोग को अगर भय की नजर से नहीं तो कम से कम शंका की नजर से अवश्य देखते थे। इसलिए उन्होंने इस सहयोग को समाप्त करने के लिए हर संभव कोशिश की। उदाहरणस्वरूप, गांधी ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं और उनके समर्थकों को सलाह देते हुए कहा कि हरिजन सेवक संघ के कांग्रेसी सदस्य इस बात का ध्यान रखें कि अछूत उन चालों में स्वतंत्र रूप से प्रवेश कर सकें जो उनके लिए बनाई गई हैं। चाल की उन दुकानों में भी जा सकें जो हिंदुओं की हैं। कांग्रेस के एक महत्त्वपूर्ण संगठनकर्ता डा. पी. जी. सोलंकी से उन्होंने विशेष रूप से आग्रह किया कि कार्यक्रमों को चलाते समय वे इस बात का ध्यान रखें कि आंबेडकर की पार्टी से कोई विवाद न हो। और जहां हरिजनों के कल्याण की बात हो वहां किसी भी प्रकार की राजनीति न की जाए। लेकिन गांधी इसमें सफल नहीं हो सके। अधिकांश वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं ने आंबेडकर से संबंधित गांधी की लाइन को नहीं माना। इस प्रश्न पर गांधी से उनका मतभेद था। ब्रिटिश सरकार ने भी इस मुहिम

को बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया। इसी बीच कट्टरपंथी हिंदुओं ने गांधी की मुहिम को हिंदू धर्म के विरुद्ध एक युद्ध मानकर गांधी को हिंदुओं का सबसे बड़ा दुश्मन घोषित किया। देश भर में महीने तक चली मुहिम के दौरान कट्टरपंथी हिंदुओं ने गांधी को जगह–जगह काले झंडे दिखाए।

हिंदू कट्टर पंथियों के विरोध का एक बड़ा उदाहरण गुजरात के एक कविथा नामक गांव में देखने को मिला जहां उच्च जाति के लोगों ने शिव के मंदिर में हरिजनों के बहिष्कार की प्रतिज्ञा की थी। यह बहिष्कार कई महीनों तक चला जिसमें दलितों को बहुत हानि उठानी पड़ी। यह मामला तभी सुलझा जब सरदार पटेल ने इसमें हस्तक्षेप कर 1935 में एक समझौता कराया।

अधिकांश समाजवादी चिंतकों ने गांधी पर उस समय उँगली उठाई जब उन्होंने कांग्रेस के जमींदार और राजाओं के विरोधी दृष्टिकोण को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। डी. पी. मिश्रा लिखते हैं कि

> "यह सच है कि बड़ी संख्या में कांग्रेस के लोग जमींदार और तालुकदार के विषय में गांधी के विचार से सहमत नहीं थे। सदस्यों के इस विरोध का नेहरू ने समर्थन किया। क्या गरीबों का शोषण करने वालों के विषय में गांधी का कथित विचार वास्तविक था? असल में, स्वाधीनता आंदोलन के समय गांधी अपने दुश्मनों की संख्या बढ़ाना नहीं चाहते थे। इसलिए कि उस समय उनका मुख्य संघर्ष विदेशियों से चल रहा था। 11 नवंबर 1931 के पहले गांधी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा कि जमींदार वर्तमान व्यवस्था के औजार है। लेकिन यह जरूरी नहीं कि उनके विरुद्ध उस समय आंदोलन चलाया जाए जब विदेशियों के साथ संघर्ष चल रहा है। इस संदर्भ में गांधी के विषय में नेहरू के विचार कि ''समय की उपयुक्तता को समझने का गुण'' उनमें बहुत अच्छा था। समझने लायक है। बाद में गांधी ने लुई फिशर को बताया कि वे भूमि पर जमींदारों के स्वामित्व को खत्म करेंगे। 8 जून 1942 को जब लुई फिशर ने उनसे पूछा कि आप अपने स्थगित सिविल नाफरमानी आंदोलन को कैसे देखते हैं तो उन्होंने कहा कि 'किसान कर देना बंद कर देंगे और उनका अगला कदम जमीन को अधिग्रहित करने का होगा।"
>
> यद्यपि कि 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के चलते गांधी और पूरी कांग्रेस वर्किंग कमेटी को गिरफ्तार कर लिया गया और आंदोलन ने एक दूसरा रास्ता पकड़ लिया। लुई फिशर की गांधी से हुई बात के बाद किसी को इस बात की शंका नहीं होनी चाहिए कि गांधी जमींदारों के समर्थक थे। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कांग्रेस से वह जो कुछ भी कराना चाहते थे वह यह कि 'सोते हुए कुत्ते को कुछ और समय तक सोने की इजाजत दे दी जाए।'

(डी. पी. मिश्रा, 'लिविंग एन एरा' से उद्धृत।)
पी. पी. 222.3, एन. के. बोस और पी. एच. पटवर्धन,
'गांधी इन इण्डिया पोलिटिक्स', 25, 78 19 से

नवंबर 1931 के दूसरे गोलमेज सम्मेलन के समय उन्होंने बड़े जोरदार ढंग से कहा कि ''जमींदार, पैसे वाले लोग और वे सब जो सुविधा संपन्न हैं,'' के कारण ही दलित और शोषित लोग निम्न स्थिति में पहुंचे हैं। इस में ब्रिटिश सरकार का भी उतना ही हाथ है। राष्ट्रीय सरकार उनको इस बात के लिए बाध्य करेगी कि वे दलितों की उन्नति के लिए भुगतान करें। इन प्रभु वर्ग के लोगों को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा कि

> "यह संघर्ष अमीर और गरीब के बीच होगा। और ऐसा होने की ही पूरी संभावना है। मुझे इस बात का डर है कि राष्ट्रीय सरकार उस समय तक अस्तित्व में नहीं आएगी जब तक ये प्रभु वर्ग लाखों मासूम लोगों के सिर पर पिस्टल लेकर खड़े रहेंगे और कहेंगे ''तुम लोगों को अपनी सरकार उस समय तक नहीं मिलेगी जब तक तुम लोग हमें अपने अधिकारों और आधिपत्य को सुरक्षित रखने की गारंटी नहीं देते।''

(डी. पी. मिश्रा 'लिविंग एन एरा' से उद्धृत 192,
तेंदुलकर, महात्मा, वाल्यूम III, 117.121 से)

गांधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अपने साथियों के साथ लगातार संघर्ष कर रहे थे। कांग्रेस के अधिकांश लोगों के लिए, राजनीति का मतलब राष्ट्रीय सरकार के रूप में ब्रिटिश सरकार का स्थानानांतरण, उस समय का मुख्य विचार था। निःसंदेह गांधी अपने सहयोगियों से इस बात के लिए कहीं अधिक व्यग्र थे कि जल्दी से जल्दी ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाए। लेकिन उनकी मुख्य सोच उन लोगों से अलग थी। उन लोगों के लिए स्वशासन के लिए भारत के सक्षम और अक्षम होने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पर गांधी के लिए यह प्रश्न था। लेकिन ठीक उसी तरह नहीं जैसे ब्रिटिश सरकार सोचती थी कि लोग स्वशासन के लिए धीरे–धीरे तैयार हों, पहले उनको नगर पालिका, फिर स्थानीय सरकार और बाद में प्रांतीय सरकार चलाने की इजाजत देनी चाहिए। बिना किसी समय सीमा के कुछ सुरक्षात्मक उपायों के साथ रक्षा और वित्त जैसी जरूरी सेवाओं के लिए शासन का अवसर दिया जाना चाहिए। उसके बाद ही लोगों को केंद्रीय सरकार चलाने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। गांधी का राजनैतिक दर्शन बिल्कुल इससे भिन्न था। उनके लिए स्वशासन करने की योग्यता का जरूरी साक्ष्य भारतीय लोगों के स्वानुशासन की क्षमता में है। उसे मुख्यतः दो रूपों में देखा जा सकता है। आंदोलन के दौरान जनता ने ब्रिटिश सरकार द्वारा किए जा रहे आंदोलन के विरोध की प्रतिक्रिया में उग्र रूप अख्तियार नहीं किया। हालांकि इससे आंदोलन का बड़ा नुकसान हुआ। इससे भी अधिक उनकी योग्यता का परीक्षण ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत स्थानीय सरकार चलाने से नहीं, बल्कि बड़े पैमाने पर खुद के नेतृत्व में आर्थिक और सामाजिक सरोकार के कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने से किया जाना चाहिए। गांधी के लिए यह काम जिसे उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम कहा, वास्तविक अहिंसा का एक जीवंत पहलू था। अर्थात, सरकार का अहिंसात्मक विरोध अहिंसात्मक सामाजिक जीवन के रूप में। लेकिन गांधी के अधिकांश सहयोगियों के लिए यह कुछ नहीं बल्कि उनका राजनैतिक संघर्ष से पीछे हटना था। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक देश के अधिकांश लोग किस तरह साम्राज्यवादी सत्ता के पिछलग्गू हो

सकते हैं? उसकी हां में हां मिला सकते हैं? और इनकी संख्या कितनी बड़ी हो सकती है? यह बात आंदोलन के दौरान पता चली।

दादा भाई नौरोजी के 'ड्रेन सिद्धांत' ने गांव और शहर के बीच के शोषणकारी रिश्ते की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। गांधी ने ग्रामीण उद्योगों के नगरीकरण की बात कही और लोग शहर की तरफ पलायन न कर सकें, इसके लिए कुछ सुरक्षात्मक उपाय की सलाह दी। 1920 के दशक में ही गांधी ने गांव और शहर के शोषणकारी रिश्ते की ओर लोगों का ध्यान खींचा था। शहरी लोग इस बात को थोड़ा सा भी नहीं जानते कि उनकी थोड़ी सी सुविधा उनकी उस दलाली का परिणाम है जो विदेशी शासकों द्वारा उनके काम के एवज में मिलती है। वह आम जनता की मेहनत की कमाई से ली जाती है या उनके शोषण से ली जाती है। अगर स्वाधीनता और स्वशासन राष्ट्रीय उद्देश्य हैं तो वे ऊपर से नहीं प्राप्त किए जा सकते हैं जब तक कि वह गांव के स्तर पर भी सच न बने। वैसे, अगर यह पिरामिड की तरह खड़ी एक सामान्य संरचना है जो ऊपर के लोगों को ही लाभ पहुँचाती है न कि नीचे के लोगों को तो यह गांधी के 'आधार' और 'अधिरचना' या 'केंद्र' और 'परिधि' की सोच की प्रकृति के प्रतिकूल है। इसी कारण उन्होंने बाद में एक नए मुहावरे ''ओसियानिक सर्किल'' का प्रयोग किया।

ikFkfedrk fdl vkanksyu dk vkj dc\

छुआछूत उन्मूलन के अपने आंदोलन के विषय में गांधी ने लिखा : "मेरा जीवन अविभाज्य है। यह कई रूपों में नहीं बना है। सत्याग्रह, नागरिक प्रतिरोध, हिंदू मुसलिम एकता, छुआछूत और इस तरह के कई मुद्दों को न तो मैं अलग–अलग नाम देता हूँ, न ही अलग–अलग समझता हूँ। इसलिए मैं इनसे अलग–अलग तरीके से जूझने की आवश्यकता भी नहीं समझता। वे एक सत्य के अविभाज्य अंग हैं। इसलिए मैं स्वराज और हिंदू मुसलिम मुस्लिम एकता को नकार कर पूरी तरह केवल छुआछूत की समस्या पर ही केंद्रित नहीं हो सकता। ये सब चीजें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और एक साथ ही चलेंगी। आप मुझे पाएंगे कि मैं कभी एक चीज पर केंद्रित हो रहा हूँ तो कभी दूसरी चीज पर। लेकिन वे सभी एक साथ जुड़े रहते हैं। एक पियानोवादक की तरह जैसे उसकी ऊँगलियां कभी एक तार पर होती हैं तो कभी दूसरी तार पर। इसलिए आप देख सकते हैं कि यह कहना मेरे लिए कितना असंभव है कि अब मुझे सिविल नाफरमानी और स्वराज से कुछ लेना देना नहीं। इतना ही नहीं अगर मैं इस तरह का प्रयास करता भी तो मैं इसमें सफल नहीं होता। पूरी तरह छुआछूत का अंत....बिना स्वराज के असंभव है।"

(15 जून 1933 को सी. एफ. एन्ड्रूज को लिखे एक पत्र से, सी. डब्ल्यु एम. जी. LV, 199.9)

अधिकांश कांग्रेसियों ने जब उनसे यह प्रश्न किया कि कैसे वे लोग एक ही साथ सिविल नाफरमानी आंदोलन और छुआछूत के विरुद्ध मुहिम में भाग लेंगे, तो इसके प्रत्युत्तर में लोगों को चकित करते हुए वे जेल से ही छुआछूत विरोधी कार्यक्रम का संचालन करने लगे। गांधी ने लिखा कि जब जेल से छुआछूत विरोधी आंदोलन चलाने का मैंने निश्चय किया तो मेरे दिमाग में इस तरह का कोई विचार नहीं था कि मैं इसे मात्र लोगों की निगाह में लाना चाहता हूँ, बल्कि मेरे समक्ष पूरा हिंदू समाज था। इसलिए अगर पूरा समाज इसे नहीं समझता है तो मात्र लोगों की निगाह में इसे लाने से इस सदियों पुरानी बुराई का अंत नहीं हो जाता। लेकिन लोगों की निगाह में लाने की विशेष प्रक्रिया भी लोगों को छुआछूत विरोधी कार्यक्रम चलाने का अच्छी तरह आहवान कर सकती है। अगर नहीं तो लोग सोचेंगे कि कोई अनुशासित प्रतिरोध आंदोलन में बचा नहीं है।

i.kdVh i=

सितंबर 1933 में जब गांधी जी छुआछूत के विरुद्ध आंदोलन की तैयारी करने जा रहे थे जो नवंबर में शुरू होने वाली थी। जवाहर लाल नेहरू उसी समय पैरोल पर रिहा हुए थे। इस अवसर का लाभ उठाते हुए जवाहर लाल नेहरू गांधी जी से मिलने पूना गए। दो दिन की विस्तृत बातचीत के बाद नेहरू ने गांधी को एक लंबा पत्र लिखा जिसका गांधी ने छोटा पर अर्थपूर्ण उत्तर दिया। यह पहली बार तेंदुलकर की किताब 'महात्मा' के अंक तीन में परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हुआ। तेंदुलकर की यह किताब उस पूरे समय को समेटती है।

अपने पत्र में नेहरू ने गांधी से सिविल नाफरमानी, छुआछूत उन्मूलन और बड़े प्रश्न के रूप में स्वाधीनता आंदोलन और कांग्रेस के आने वाले कार्यक्रम के विषय में बात की थी। पर नेहरू ने विशेष रूप से 'करांची फंडामेंटल राइट डाकुमेंट' में उठाए गए मुद्दों और उस समय के अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर चर्चा की थी। अपने उत्तर में गांधी ने लिखा

> ."...तुम्हारे पत्र में मैंने एक अंतराल/फाँस देखी है। आपने कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे बहुत से रचनात्मक कार्यक्रमों का उल्लेख नहीं किया है। ये कार्यक्रम कांग्रेस के अभिन्न अंग हैं, जो वर्ष 1920 में काफी विचार विमर्श के बाद बनाए गए थे। छुआछूत उन्मूलन, साम्प्रदायिक एकता, खद्दर और हथकरघा जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों के बिना हम सिविल रजिस्टेंस की पृष्ठभूमि नहीं तैयार कर सकते। अब मैं पहले से कहीं अधिक इन चीजों में विश्वास करने लगा हूँ। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जब कांग्रेस के सैंकड़ों हजारों लोग जेलों में होते हैं तो बाहर लाखो–लाख लोग विरोध के लिए उपस्थित रहते हैं। अगर किसी परिस्थिति में ये लाख लोग हमारे साथ नहीं हैं तो हमें समझना चाहिए कि हम कहीं न कहीं गलत हैं। हालांकि यह संख्या कम है, पर हम इन्हें ही बनाए रखने में सफल नहीं हुए तो यह हमारी सबसे बड़ी नाकामी होगी। यह स्वीकार करने में कोई शर्म की बात नहीं कि कुछ लोग किन्हीं कारणों से 'सिविल रजिस्टेंस रैंक' में शामिल होने में असमर्थ हैं पर वे भी देश की सेवा में लगे हैं। वे लोग भी उसी तरह उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोग कर रहे हैं जिस तरह वे लोग जो किसी न किसी रचनात्मक कार्य में लग कर काम कर रहे हैं जिसे मैंने तय किया है और इस तरह के अन्य क्रिया कलाप में भी जिसको मैं बता सकता हूँ। अस्त्र रहे या न रहे, अगर कांग्रेस के स्त्री या पुरुष अकेले स्वाधीनता आंदोलन के घर को बनाने के लिए अपने हिस्से के कार्य को करने की कला को सीख लेते हैं, और खुद के महत्त्व को समझ लेते हैं, तो कितनी भी मुश्किल परिस्थिति हो, उसके लिए चिंतित होने का कोई कारण नहीं बनता।"

वर्ष 1933 में राष्ट्रीय आंदोलन एक कठिन/निर्णायक स्थिति में था। सिविल नाफरमानी आंदोलन कमजोर था। गांधी इस बात को जानते थे कि संगठन अपनी क्षमता के अधिकतम सीमा तक पहुँच चुका है। उस समय कांग्रेस का विस्तार दो कारणों से सीमित हो गया था। पहला कारण तो वर्गीय था। कहने का आशय यह कि कांग्रेस के आंदोलन को कुछ विशेष वर्ग या समूह के लोगों ने ही समर्थन दिया। जिसके कारण शेष वर्ग के लोग या तो उसमें रूचि नहीं दिखाई या उसमें शामिल ही नहीं हुए। दूसरा कारण उस समय के कांग्रेस के समर्थकों के मूड से संबंधित था। उदाहरण के लिए 1930 के नमक सत्याग्रह के दौरान लोग उत्साह से भरे थे और वह अपने चरम पर था। बड़ी मेहनत के बाद लोगों को सफलता मिली थी जिसमें लोग डूबे हुए थे और उन्हें पुनः किसी आंदोलन के लिए तैयार होने में थोड़े अंतराल की आवश्यकता थी। गांधी कांग्रेस के जन समर्थन का क्रांतिकारी विस्तार करने की सोच रहे थे। और साथ ही उससे उनको जो उत्तर मिलता उसकी गति को किसी उपयुक्त नारे के साथ आंदोलन को तेज करना चाहते थे। इसलिए वे आंदोलन के लिए इस तरह का आह्वान करना चाहते थे जो आम लोगों की जरूरतों के अनुरूप हो और उसके लिए ऐसे कार्यक्रम बनाना चाहते थे जिनसे लोग अपने आपको जोड़ सकें। इसी संदर्भ में हम गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम के महत्त्व की प्रशंसा कर सकते हैं। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को सफल बनाने के लिए ये कार्यक्रम बड़े पैमाने पर आम जनता को तैयार करने के साधन के रूप में थे।

दास प्रथा के अंत का शताब्दी वर्ष

29 जुलाई 1933 विलियम विल्वर फोर्स (William Wilber force) के देहांत की सौवीं 'वर्षगांठ थी। वे दास प्रथा उन्मूलन अधिनियम के जनक माने जाते हैं जिसे ब्रिटिश संसद ने पास किया था। उनके देहांत का शताब्दी वर्ष अंतर्राष्ट्रीय समारोह के रूप में उनके जन्म स्थान 'हल' में मनाया जाना था। इस अवसर पर गांधी पूरे विश्व को कोई संदेश दें इसके लिए उनसे गुजारिश की गई। गांधी ने एक छोटा सा टेलीग्राम भेजा जो एक तरफ अपनी प्रकृति में अद्वितीय रूप से अंतर्राष्ट्रीय था तो दूसरी तरफ आश्चर्यजनक रूप से भारतीय समाज के दमनकारी परंपरा का साहसिक आत्मालोचन करने वाला था। संदेश इस प्रकार था :

> "भारत को दासता उन्मूलन के नायकों से बहुत कुछ सीखना है। हमारे यहां दासता धर्म द्वारा स्वीकृत है जो पश्चिम की अपेक्षा अधिक घातक है।"

दक्षिण अफ्रीकी और भारतीय छुआछूत के बीच अंतर

सी. एफ. एन्ड्रूज दक्षिण अफ्रीका गए। वहां से उन्होंने इस आशय का एक छोटा सा समाचार भेजा कि किस तरह यहां जातीय भेदभाव है यहां तक कि इस तरह का भेदभाव ईसाई चर्चों में भी है। यह समाचार हरिजन में प्रकाशित हुआ। गांधी ने इसका प्रत्युत्तर लिखा जो 2 सितंबर 1933 को अगले अंक में प्रकाशित हुआ :

> "दीनबंधु एंड्रूज ने पिछले हफ्ते दक्षिण अफ्रीका में छुआछूत के विषय में लिखा और दिखाया कि कैसे वहां कुछ लोगों के चर्च प्रवेश पर रोक लगी है। वैसे, दोनों जगहों के छुआछूत के बीच तुलना ठीक नहीं। दक्षिण अफ्रीका में यह रंग पर आधारित है। और उसे कानून और धर्म द्वारा स्वीकृति नहीं प्राप्त है। दुर्भाग्य से भारत में बड़ी संख्या में हिंदुओं द्वारा यह धर्म से संबंधित मानी जाती है। यह सभी जानते हैं कि यह कानून द्वारा भी स्वीकृत है। इसलिए भारत में छुआछूत दक्षिण अफ्रीका की तुलना में अधिक बुरी है। जहां तक पीड़ितों का संबंध हैं इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों जगहों की छुआछूत समान रूप से हानिकारक है। ऐसा लगता है कि भारत में इसके विरुद्ध संघर्ष दक्षिण अफ्रीका की तुलना में अत्यंत कठिन होगा।

एक तरफ अपने संघर्ष में गांधी यह मानते थे कि ''कंबैटिव एक्सन'' और ''कंबैटिव आब्जेक्टिव'' के बीच नजदीकी का संबंध होता है तो दूसरी तरफ संघर्ष के लिए लोगों को पूरी तरह तैयार करना जो कम महत्त्वपूर्ण लग सकता है, यहां तक कि ''नान कंबैटिव'' आब्जेक्टिव वाला लग सकता है। प्रचार और शिक्षा के माध्यम से आम लोगों की चेतना को एक नए स्तर तक उठाना और फिर उन्हें एक साझा कार्य के लिए तैयार करना, जो अंततः उद्देश्य या स्वयं में साध्य बन जाता है। साझा कार्यक्रम के लिए लोगों को तैयार करने की सफलता से आम लोगों की चेतना को जागृत किया जा सकता है, ऐसा गांधी का विश्वास था। इस द्वन्द्वात्मक संबंध के साथ उनके लगाव को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है।

> ".....वर्तमान में सिविल नाफरमानी के लिए तैयारी का अर्थ है हथकरघा, छुआछूत उन्मूलन, हिंदू मुसलिम एकता का प्रचार, निषेध का प्रचार, कांग्रेस को संगठित करना, सदस्य बनाना, आंतरिक एकता और स्वयं का शुद्धीकरण आदि। वर्तमान में इससे अधिक कुछ भी नहीं। अगर इस कार्यक्रम को पूरा देश स्वीकार कर लेता है

तो हम अपने उद्देश्यों को बिना सिविल नाफरमानी के कम से कम प्रयासों के द्वारा भी प्राप्त कर सकते हैं।"

(आइटम 117, अगस्त 1929, सी. डब्ल्यु. एम. जी. सप्लीमेंट–II, 67)

वर्ष 1931 में कांग्रेस के करांची अधिवेशन में गांधी ने एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसका नाम था 'इंडियन बिल आफ राइट'। यह भारतीय लोगों के मूलभूत अधिकार से संबंधित था। यह बड़े महत्त्व का था जिससे प्रभावित होकर एक अमेरिकी पत्रकार ने लिखाः उन लोगों के लिए जो सदियों से निरंकुश आतंक के अंदर जी रहे थे यह मूलभूत अधिकार जिसे गांधी ने स्वीकृति के लिए रखा है काफी प्रभावित करने वाला है। मुझे याद है कि ब्रिटिश लोगों ने गांधी की तरह अन्य भारतीयों को भी लोकतंत्र और नागरिक अधिकार के विषय में बताया है। यद्यपि उन्होंने इसे भारतीयों को देने से इनकार किया। इस विधयेक के जरूरी और महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं सहयोग, भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता, अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता, राज्य की तरफ से धार्मिक तटस्थता, स्त्री और पुरुष दोनों के लिए व्यस्क मताधिकार आदि।

(विलियम शिटर, गांधी : ए मेमॉयर, 131)

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए सरदार पटेल ने छुआछूत की निंदा की और कहा कि ''यह हिंदू धर्म पर बड़ी कालिख है'' और उन्होंने घोषणा की कि ''जब तक छुआछूत नहीं समाप्त होती तब तक कोई भी स्वतंत्रता किसी महत्त्व की नहीं होगी।''

xkèkh dk dqN dFku

मैं ‘लेबर फेडरेशन’ और हरिजनों के बीच भेदभाव को समाप्त करने के लिए स्वयं फेडरेशन से मांग करता हूँ। मैं ऐसी अपील समझ बूझ कर रहा हूँ क्यों कि मैं अहमदाबाद के मिलों के लोगों से सीधे संपर्क में रहा हूँ। मैं उन श्रमिकों को जानता हूँ जो हरिजन और गैर–हरिजन के बीच भेदभाव करते हैं। मैं श्रमिकों से अन्य लोगों की तुलना में इस तरह के भेदभाव को समाप्त करने में सहयोग की अधिक अपेक्षा करता हूं। यह मेरा अटूट विश्वास है कि एक न एक दिन श्रमिकों के माध्यम से ही साम्प्रदायिक भेदभाव को समाप्त करने में सफलता मिलेगी। मैं श्रम को लोगों को जोड़ने वाला एक शक्तिशाली तत्व मानता हूँ। यह समानता को लाने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। श्रमिकों में साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन होना बड़े शर्म की बात है क्योंकि ये सभी लोग अपनी रोजी रोटी कड़ी मेहनत से कमाते हैं और एक दूसरे से भ्रातृत्व के स्तर पर जुड़े रहते हैं। इसलिए इन्हें छुआछूत को समाप्त करने की शुरूआत करनी चाहिए। यह साम्प्रदायिक एकता के लिए बड़ा कदम होगा। अगर एक बार हरिजनों के विरुद्ध छुआछूत समाप्त कर दी जाती है तो इससे बड़े पैमाने पर हिंदू, मुस्लिम और इसी तरह अन्य समुदायों के बीच एकता का मार्ग प्रशस्त होगा।

एक मुसलमान मित्र ने गांधीजी से पूछा कि वे एक राष्ट्रीय नेता हैं तो फिर क्यों वे राष्ट्र के छोटे से समूह के बीच काम कर रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गांधी ने लिखा

इस कार्य के माध्यम से मैं लोगों को बताने का प्रयास कर रहा हूँ कि हिंदू समाज एक बड़ा परिवार है जिसमें मैं एक बीमारी देखता हूँ। अगर समय पर यह हटाई नहीं गई तो वह पूरे हिंदू समाज को तबाह कर देगी। छुआछूत की बीमारी अपनी सीमाओं को पार कर चुकी है। हिंदू समाज से इस बुराई को दूर करने के माध्यम से मैं सभी समुदायों की सेवा कर रहा हूँ। यद्यपि सभाओं के द्वारा जातीय एकता के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिल पायी है पर मैं इस बात से निराश नहीं हूँ। एक न एक दिन लोगों के दिलों को जोड़ने में सफलता मिलेगी। ईश्वर ने मुझे इस काम के लिए भेजा है। यह काम मैं इस विश्वास से कर रहा हूँ कि यह एक न एक दिन जातीय एकता का मार्ग प्रशस्त करेगी।

(एक भाषण से जिसे उन्होंने बिलासपुर में 25 नवंबर 1933 को ‘बी. एन. रेलवे लेबरर्स फेडरेशन’ के समक्ष दिया था, पी. डब्ल्यु. एम. जी–LVI, 282)

''छुआछूत को खत्म करो नहीं तो हिंदू धर्म विश्व से समाप्त हो जाएगा।''

(25 दिसंबर 1933 को दिल्ली में श्रमिकों की एक सभा में बोलते हुए सी. डब्ल्यु. एम. जी.–LV, 136)

मैं इसाई, मुस्लिम और अन्य लोगों को एक अविभाज्य राष्ट्र के रूप में स्वीकार करता हूँ आपस में जिसके हित समान हैं। ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक लोग अपने आपको अल्पसंख्यक नहीं मानेंगे। अगर छुआछूत समाप्त हो जाती है तो हिंदुओं और अल्पसंख्यक लोगों के करीब आने की जो बाधाएं हैं वह समाप्त हो जाएगी जिससे उद्देश्यों और हितों की एक नयी एकता कायम होगी और उसमें खुलापन आएगा।

(22 दिसंबर 1933 को 'मद्रास मेल' में दिए गए एक साक्षात्कार से सी. डब्ल्यु. एम. जी. LVI पी. 384)

मेरा यह एक काम है, अगर यह पूरी तरह संभव है तो, उन लोगों को ऊपर उठाना जो लोग मुसीबतों में है। यह काम मैं इसलिए करना चाहता हूँ कि मैं स्वयं को ऊपर उठाना चाहता हूँ। उनके अधःपतन की स्थिति से मैं अधःपतित महसूस कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि अगर हिंदू लोग छुआछूत की बुराई से अपने आपको मुक्त कर लेते हैं तो आप पाएंगे कि वे सभी भेद जो मात्र अछूतों और हिंदुओं के बीच के ही नहीं, बल्कि हिंदुओं और अहिंदुओं के बीच हैं छूमंतर हो जाएंगे।

(18 जनवरी, 1934 को पालु रू थी, केरल में दिए गए एक भाषण से)

सी. डब्ल्यु, एम. जी. स्ट. II –13

बिहार में 1934 में आए भूंकप के बाद गांधी का धन संग्रह :

बिहार के लोग पैसे लाए। मैंने उनसे कहा कि जो फंड मैं इकट्ठा कर रहा हूँ उसमें वे उसी शर्त पर सहयोग कर सकते हैं कि जब वे इस बात को माने कि छुआछूत हिंदू समाज का एक कलंक है। लोगों ने यह स्वीकार किया और पैसे दिए। यहां तक कि महिलाओं ने मेरे पैर छूकर इसे स्वीकार किया और पैसे दिए। अपने अंतःकरण को पवित्र करो। छुआछूत एक सामाजिक पाप है। कोई भी व्यक्ति अछूत नहीं पैदा हुआ है। अगर आप लोग अपनी समस्याओं को हटाना चाहते हो तो छुआछूत को समाप्त करो। किसी वायसराय का पैसा या कोई केंद्रीय कमेटी इस काम में सहयोग नहीं कर सकती। यही सब कुछ है जिसे मैं कहना चाहता हूँ।

(आइटम 764, 1934 में भागलपुर में दिए गए स्पीच में)

सी. डब्ल्यु, एम. जी. सप्लीमेंट II, 467.8

हालांकि गांधी ने मुहिम का समापन निराशाजनक माहौल में नहीं किया, लेकिन उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि उनके पूरे नेतृत्व और भ्रमित क्रांतिकारिता में जो उस समय शहरी बुद्विजीवियों के बीच व्याप्त हो गई थी, अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गई

है। अगस्त में अपनी मुहिम को समाप्त करने के बाद गांधीजी ने लगभग दो महीने तक पूरी घटनाओं का निरीक्षण किया। और वर्धा में 1934 में संपन्न हुई कांग्रेस वर्किंग कमेटी की सभा में कांग्रेस के संगठन से सेवा निवृत्ति की घोषणा कर दी। नौ महीने की अपनी हरिजन यात्रा में उन्होंने 12500 मील का सफर तय किया और 9 लाख रुपए इकट्ठा किए। उन्होंने एक प्रेस साक्षात्कार में दस महीने के अपने अनुभवों के विषय में कहा कि इस दौरान मैंने अनुभव किया कि छुआछूत अपनी अंतिम अवस्था में है। लाखों लाख लोग जो सभाओं में आए और मैं उनसे जो कह रह था उससे वे अनभिज्ञ नहीं थे। निश्चित रूप से वे मुझसे असहमत नहीं थे। बड़े पैमाने पर सनातनियों द्वारा मुहिम के खिलाफ फैलाया गया दुष्प्रचार अज्ञान को नहीं बढ़ा सका। इस आंदोलन के विरुद्ध जनता के दुराग्रह को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। इस विषय में बड़ा से बड़ा झूठ फैलाया गया। यह कहना गलत होगा कि मेरी सभाओं में इतनी संख्या में आने वाले लोग मुझे देखने के लिए आते थे और मेरे संदेश से उनका कोई लेना देना नहीं था। मुझे पूरी तरह विश्वास है कि मेरे संदेश ने लोगों के विवेक को अपील किया। और मैं इस बात से भी सहमत हूँ कि उनमें सभी मेरे द्वारा दिए गए विचारों से सहमत होते हुए भी उसे व्यवहार में लाने के लिए तैयार नहीं है। लेकिन इसे मैं एक बड़ी उपलब्धि मानता हूँ कि लोगों ने मेरे संदेशों की सच्चाई में विश्वास करना शुरू कर दिया है, यह कार्यकर्त्ताओं के काम को पहले की अपेक्षा और आसान बनाता है। यह दिखाने के लिए कि किस तरह जनता ने मन से इस आंदोलन में भाग लिया है। इसे सिद्व करने के लिए मैं एक लाख रुपए का जिक्र करूंगा जिसे गरीब से गरीब जनता ने मुझे दिया है। लोग उस काम के लिए सहयोग नहीं करते जिसे वे पसंद नहीं करते। तीसरी बात मैं यह कहना चाहूंगा कि बड़े पैमाने पर इस तरह के जागरूक करने के कार्यक्रम हरिजनों में भी चल पड़ा है। उसमें से अधिकांश लोगों ने मुझसे कहा है कि उनकी स्थितियों में कुछ बदलाव आया है और वे अब यह विश्वास करने लगे हैं कि छुआछूत एक न एक दिन समाप्त होकर ही रहेगी। उनके विश्वास में मैं अपना विश्वास भी व्यक्त करता हूँ। अगर आंदोलन चलता रहा जैसा कि वर्तमान में चल रहा है, और आगे भी इसी तरह चलता रहा तो इसमें मुझे कोई शक नहीं कि यह हरिजनों में जागरूकता पैदा करेगा। जब वे पूरी तरह यह अनुभव करेंगे कि कैसे वे स्वयं इसमें सहयोग कर सकते हैं और कैसे अधिकांश मामलों में कानून उनके साथ है तो, चाहे सवर्ण इसे पसंद करें या न करें, हरिजन अपनी स्थिति को अच्छी बना लेंगे। मैं उम्मीद करता हूँ कि सवर्ण हिंदू लोग छुआछूत की बुराई को जैसा कि आज प्रचलित है, समझेंगे और स्वयं को इससे छुटकारा पाने की कोशिश करेंगे। अगर नहीं तो परिस्थितियों के चलते ऐसा करने पर मजबूर कर दिए जाएंगे। चाहे जो कुछ भी हो छुआछूत अब बहुत सालों तक टिकने वाली नहीं है।

(डी. जी. तेंदुलकर, महात्मा, वाल्यूम.III, 344.5)

स्वतंत्रता के बाद छुआछूत औपचारिक रूप से समाप्त कर दी गई और ठीक उसके तुरंत बाद गांधी की मौत हो गई। भारतीय संविधान ने दलितों के पक्ष में किसी भी तरह के भेदभाव के विरुद्ध नीति निर्देशक सिद्वांतों को स्वीकार किया। पर विगत चालीस वर्षों

में इसका क्रियान्वयन नहीं हो सका है। सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के बावजूद पहले तीन आम चुनावों में बहुत कम मात्रा में दलित लोग अपने मताधिकार का प्रयोग कर पाए। इसलिए आज यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है कि जब तथाकथित रेडिकल दलित आलोचक गांधी की यह कह कर आलोचना कर रहे थे कि गांधी का दर्शन भावुकता से भरा और अव्यावहारिक है या जब वे गांधी पर आरोप लगा रहे थे कि दलितों के दुःखों और पिछड़ेपन के लिए वे ही जिम्मेदार हैं, तो वे किसको लाभ पहुंचा रहे थे? प्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन शासकों के उत्तराधिकारी आज जो अपनी अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार के कारण दलितों की आलोचना और गुस्से के शिकार है, उन्हीं को न? लेकिन सारा गुस्सा गांधी पर उतारा गया। छुआछुत की मुहिम के बदले गांधी को क्या मिला?

महात्मा गांधी की 125 वीं वर्षगांठ पर पूरे देश में वर्ष भर तक चलने वाला यह समारोह उस समय आया है जब देश की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति नैतिकता के गहरे संकट से गुजर रही है। बहुत दिनों की उपेक्षा के बाद शायद अब लोग गांधी के महत्त्व को स्वीकारने लगे हैं। शायद उनके अनुभवों से सीखने की यह शुरूआत है कि लोग यह समझने लगे हैं कि आज देश जिन बहुआयामी संकटों से गुजर रहा है वह इसलिए कि वह स्व सहयोग और नीचे से विकास के गांधी के सूत्र को भूल गया है। विपरीत अनुभव और निराशाजनक स्थिति में तभी कोई उम्मीद बंधेगी जब गांधी के रास्ते को पहचाना जाएगा क्योंकि इसी रास्ते से अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर आगे बढ़ने की नई शुरुआत की जा सकती है।

लेखक का परिचय

बरेन रे, 1940 के दशक के अपने छात्र जीवन के प्रारंभिक समय से ही राजनीतिक कार्यकर्ता थे। उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों के कारण, स्वतंत्रता के पहले और बाद में भी कई बार जेल यात्रा की। वह 'इंडियन और इंटरनेशनल पीस एडं सोलिडेरिटी' आंदोलन की स्थापना से ही, इसमें अनेक वर्षों तक सक्रिय रहे। उन्होंने दो बार 1969 से 1973 तक तथा 1975 से 1981 तक 'एफ्रो–एशियाई पीपुल्स' सोलिडेरिटी आर्गेनाइजेशन (कैयेरो में मुख्यालय) के स्थायी सचिवालय में भारत का प्रतिनिधित्व किया और दूसरे कार्यकाल में संगठन के उप–सचिव–जनरल के रूप में कार्यरत्त रहे थे। उन्होंने बहुत व्यापक यात्राऐं की है, जिसमें अधिकांश यूरोपीय और साथ ही एफ्रो–एशियाई और अन्य विकासशील देश शामिल हैं। 1981 के बाद से उन्होंने खुद को पूरी तरह से अनुसंधान के लिए समर्पित कर दिया और 1988–90 और 1999–93 में भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद के फैलो रहे। वह निरंतर लिखते रहे और उनके नाम से अनेक प्रकाशन हुए हैं।

पुस्तिका परिचय

बरेन रे स्वतंत्रता सेनानी एवं कम्युनिस्ट आंदोलन से जुड़े एक चिंतनशील बौद्धिक थे। कम्युनिस्ट आंदोलन ने अस्पृश्यता और जाति प्रथा के माध्यम से शोषण की संस्थागत प्रक्रियाओं के बारे में उस प्रतिबद्धता और गहराई से नहीं सोचा है, जितना पूंजीवाद के बारे में सोचा, लिखा एवं किया है। यूरोप में मज़दूर आंदोलन की ताकत एवं पूंजीवादी फ्रेम में चलने वाले राज्यों को कल्याणकारी राज्य में रूपान्तरित करने में मार्क्सवादी धारा की महत्ती भूमिका थी। भारत के समाजवादी आंदोलन में राष्ट्रभक्ति और देश की राजनैतिक आज़ादी के लिए गांधी जी की प्रेरणा के अतिरिक्त आर्थिक शोषण मुक्ति के प्रश्न पर मार्क्सवादी प्रेरणाओं और पदावली का मुख्य स्थान रहा है। डॉ. राममनोहर लोहिया एवं अशोक मेहता को छोड़कर प्रायः अन्य सभी प्रमुख चिंतनशील नेता मोटे तौर पर मार्क्सवादी फ्रेम को ही मानते थे। कम से कम समाजवादी आंदोलन के शैशवकाल में आंदोलन के प्रायः सभी नेताओं के बारे में यह बात कही जा सकती है। चाहे लिबरल हों या मार्क्सवादी, जाति प्रथा और अस्पृश्यता के बारे में केवल आर्थिक और आधुनिकता के नज़रिए से ही सोचते थे। मोटे तौर पर आर्थिक प्रगति के साथ–साथ 'आधुनिकता' की सोच से जाति प्रथा की चुनौती स्वयंमेव हल हो जायेगी ऐसा इन विचारधाराओं को मानने वाले मानते थे।

हिटलर और मुसोलिनी को अपना मॉडल मानने वाले तथाकथित भारतीय राष्ट्रवादियों ने अस्पृश्यता एवं जाति प्रथा के शोषणकारी ढाँचे के विरुद्ध चल रहे अभियानों का सक्रिय विरोध किया, यहाँ तक कि हिंसक हमले भी किए। वंचित तबकों के लिए विशेष अवसर (आरक्षण) की कोशिशों के बारे में निरंतर प्रश्न चिन्ह लगाये। दूसरे शब्दों में कहें तो ब्राह्मणवाद को पुनर्स्थापित करने की हर कोशिश की। जब राष्ट्र निर्माण आंदोलन, राजनैतिक आज़ादी के आंदोलन एवं वोट राज की साझी ताकत के चलते यह संभव न हुआ तो इस धारा ने सामाजिक क्रांति के प्रतीकों का मुखौटा पहनना शुरू किया, बिना उनके उसूलों को आत्मसात् किये। महात्मा गाँधी ने हिन्दू चेतना या ज्यादा सटीक होगा यह कहना कि समग्र भारतीय चेतना में अस्पृश्यता के पाप के प्रति अपराध बोध एवं प्रायश्चित बोध जगाने का युग परिवर्तनकारी काम किया। दक्षिण पंथी–ब्राह्मणवादी ताकतों ने उनके इन प्रयासों के कारण उन पर कई दुस्साहसपूर्ण हमले किये। अपनी मनुष्यता और आध्यात्मिक पूंजी के अतिरिक्त गाँधी जी की अस्पृश्यता के बारे में गहरी समझ के दो मुख्य स्त्रोत थे– एक, बाबा साहब आम्बेडकर का उस समय अस्पृश्य माने जाने वाले समाज को सातत्यपूर्वक एवं एकाग्रनिष्ठा से जागृत और संगठित करना और दूसरा, बाबू जगजीवन राम का इस मुद्दे पर निरंतर निस्वार्थ भाव से गाँधीजी का साथ देना। जगजीवन बाबू ने गाँधी जी एवं अस्पृश्य कहे जाने वाले बृहद समाज के बीच संवाद–सेतू का काम किया।

बरेन रे के इस आलेख का ऐतिहासिक महत्व है। यह इस बात का उदाहरण है कि जब एक कम्युनिस्ट प्रामाणिकता, भावनात्मक एवं बौद्धिक साहस से समाज की किताब पढ़ता है तो वह अस्पृश्यता और गाँधी जी के बारे में कैसे सोचता है। उम्मीद है कि गाँधी जी का विरोध करने वाली धाराएं भी इस पर पुनर्विचार करेंगी। यदि ऐसा होता है तो छद्म हिंदुओं और ब्राह्मणवादियों द्वारा वसुधैव कुटुम्बकम् का प्रयोग एक ढोंगपूर्ण छद्म नारे के रूप में मुश्किल हो जायेगा। ऐसे में गाँधी–आम्बेडकर के विचार हमारे देश और दुनिया की वास्तविकता को बेहतर बनाने का औज़ार बनेंगे।

'हरित स्वराज' का विचार मनुष्य से प्रकृति के रिश्ते को समाज के राजनैतिक, सामाजिक, साँस्कृतिक पक्षों के लोकतान्त्रिक आधार से जोड़ता है। 'दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद' (सैडेड) विभिन्न वैचारिक प्रवाहों को संजो कर उनके बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है ताकि 'हरित स्वराज' के बहुआयामी विचार की गहराई तक पहुँचा जाए। दक्षिण एशिया के संदर्भ में 'हरित स्वराज संवाद' ऐसे व्यापक प्रवाहों का हिस्सा है जो स्थानीय समुदायों से लेकर देश व दुनिया के स्तर पर मनुष्य जीवन के लोकतान्त्रीकरण के लिए प्रयासरत् हैं। यह प्रकल्प सेन्टर फॉर द स्टडी ऑफ डवेलपिंग सोसाइटीज़, लोकायन, केपा व सिएमेनपू फाऊन्डेंशन (फिनलैण्ड) की साझी सृजनात्मक पहल के बतौर शुरू हुआ था।

'दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद' एक चौपाल है। इसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें लेखक के विचार प्रस्तुत करती हैं ताकि समाज में चल रहे संवादों की झलक मिले। संवाद की इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए पाठकों से गुज़ारिश है कि वह इसमें भागीदार बनें व अपने विचार हमें लिख भेजें।

दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद

South Asian Dialogues on Ecological Democracy (SADED)

www.saded.in

ISBN
978-93-81144-63-3